

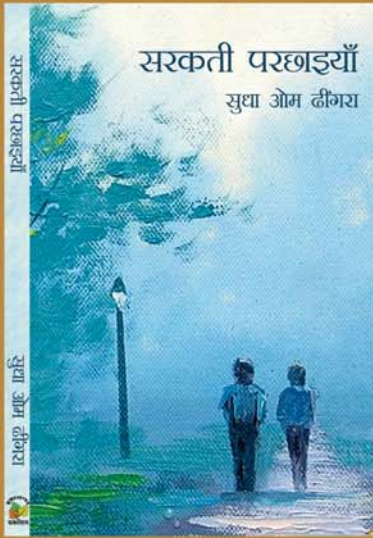


हिन्दी प्रचारिणी सभा: (कैनेडा) की अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका
Hindi Chetna: International quarterly magazine of Hindi Pracharini Sabha Canada
वर्ष : १७, अंक : ६५, जनवरी २०१५ • Year 17, Issue 65, January 2015

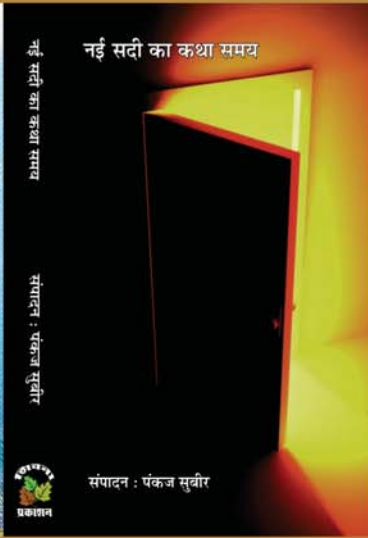
हिन्दी चेतना



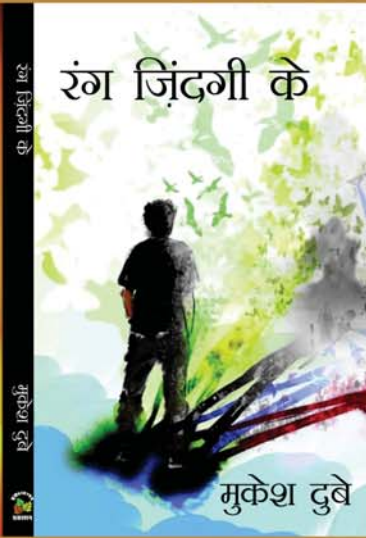
शिवना प्रकाशन



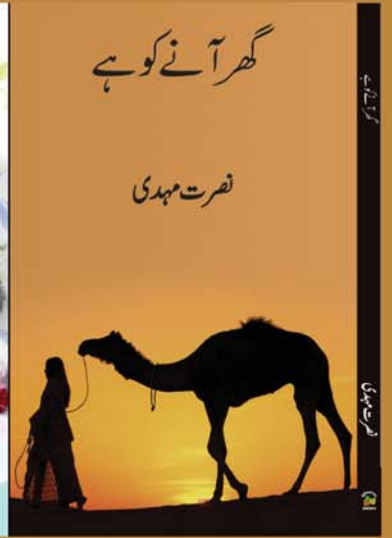
सरकती परछाइयाँ (काव्य संग्रह)
सुधा ओम ढींगरा
ISBN: 978-93-81520-08-6
सजिल्द संस्करण : 2014
मूल्य : 150.00 रुपये



नई सदी का कथा समय
(संपादन पंकज सुबीर)
ISBN: 978-93-81520-14-7
मूल्य : 200 रुपये
प्रथम संस्करण : 2014



रंग जिंदगी के
मुकेश दुबे
ISBN: 978-93-81520-15-4
मूल्य : 150 रुपये
प्रथम संस्करण : 2015



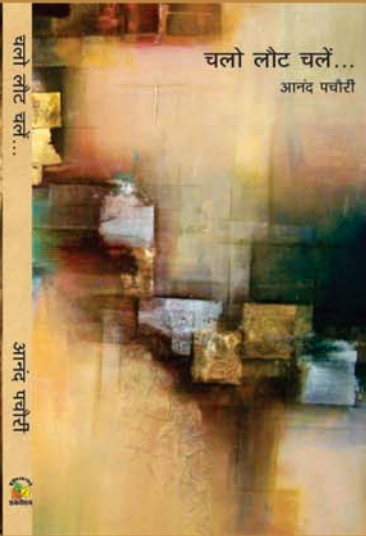
घर आने को है नुसरत मेहदी
नुसरत मेहदी
ISBN: 978-93-81520-13-0
मूल्य : 100 रुपये
प्रथम संस्करण : 2014



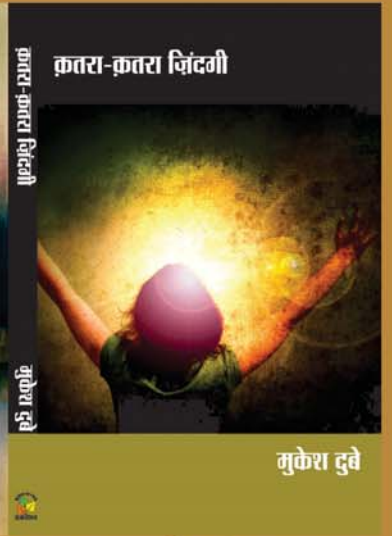
कड़ी धूप का सफ़र (उपन्यास)
मुकेश दुबे
ISBN: 978-93-81520-10-9
पहला सजिल्द संस्करण : 2014
मूल्य : 150.00 रुपये



तितलियों को उड़ते देखा है...?
(काव्य संग्रह) मधु अरोड़ा
ISBN: 978-93-81520-12-3
पहला सजिल्द संस्करण : 2014
मूल्य : 150.00 रुपये



चलो लौट चलें (काव्य संग्रह)
आनंद पचौरी
ISBN: 978-93-81520-09-3
पहला सजिल्द संस्करण : 2014
मूल्य : 150.00 रुपये



क़तरा-क़तरा जिंदगी (उपन्यास)
मुकेश दुबे
ISBN: 978-93-81520-11-6
पहला सजिल्द संस्करण : 2014
मूल्य : 150.00 रुपये



शिवना प्रकाशन

शॉप नं. 3-4-5-6, पी. सी. लैब, सम्राट कॉम्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्यप्रदेश 466001

फोन 07562-405545, 07562-695918, मोबाइल +91-9977855399

Email: shivna.prakashan@gmail.com, http://shivnaprakashan.blogspot.in

संरक्षक एवं प्रमुख सम्पादक
श्याम त्रिपाठी
(कैनेडा)

सम्पादक
सुधा ओम ढींगरा
(अमेरिका)

सह-सम्पादक
रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' (भारत)
पंकज सुबीर (भारत, समन्वयक)
अभिनव शुक्ल (अमेरिका)

परामर्श मंडल
पद्मश्री विजय चोपड़ा (भारत)
कमल किशोर गोयनका (भारत)
पूर्णमा वर्मन (शारजाह)
पुष्पिता अवस्थी (नीदरलैंड)
निर्मला आदेश (कैनेडा)
विजय माथुर (कैनेडा)

सहयोगी
सरोज सोनी (कैनेडा)
राज महेश्वरी (कैनेडा)
श्रीनाथ द्विवेदी (कैनेडा)

विदेश प्रतिनिधि
डॉ. एम. फ़िरोज़ ख़ान (भारत)
चाँद शुक्ला 'हृदियाबादी' (डेनमार्क)
अनीता शर्मा (शिंघाई, चीन)
अनुपमा सिंह (मस्कट)

वित्तीय सहयोगी
अश्विनी कुमार भारद्वाज (कैनेडा)

रेखाचित्र : रमेश गौतम
आवरण : अरविंद नारले
डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी (सीहोर, भारत)
शहरयार अमजद ख़ान (सीहोर, भारत)



हिन्दी
चेतना



(हिन्दी प्रचारिणी सभा कैनेडा की त्रैमासिक पत्रिका)
Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna
ID No. 84016 0410 RR0001

Financial support provided by Dhingra Family Foundation

वर्ष : १७, अंक : ६५

जनवरी-मार्च २०१५

मूल्य : ५ डॉलर (\$5), ५० रुपये



HINDI CHETNA

6 Larksmere Court, Markham Ontario, L3R 3R1

Phone : (905) 475-7165, Fax : (905) 475-8667

e-mail : hindichetna@yahoo.ca

Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna

ID No. 84016 0410 RR0001

Hindi Chetna is a literary magazine published quarterly in Toronto, Ontario under the editorship of Mr. ShiamTripathi. Hindi Chetna aims to promote the Hindi language, Indian culture and the rich heritage of India to our children growing in the Canadian society. It focuses on Hindi Literature and encourages creative writers, young and old, in North America to write for the magazine. It serves to keep readers in touch with new trends in modern writing. Hindi Chetna has provided a forum for Hindi writers, poets, and readers to maintain communication with each other through the magazine. It has brought local and international writers together to foster the spirit of friendship and harmony.

जनवरी-मार्च 2015

हिन्दी
चेतना 3

इस अंक में

वर्ष : 17, अंक : 65

जनवरी-मार्च 2015

सम्पादकीय 5

उद्गार 6

कहानियाँ

सितम के फ़नकार

मृदुला गर्ग 9

सिगरेट बुझ गई

नीना पॉल 13

मोरा पिया मोसे बोलत नाहि...

कंचन सिंह चौहान 19

इष्टा बाई

सरस दरबारी 23

बहता पानी

अनिल प्रभा कुमार 25

कहानी भीतर कहानी

जीवन हमारा क्रांतदास नहीं है

संदर्भ : बहता पानी, अनिल प्रभा कुमार

सुशील सिद्धार्थ 28

साक्षात्कार

अच्छी शिक्षा सदैव राजनीति से अलग रहती है:

डॉ. अफ़रोज़ ताज

बातचीत : डॉ. सुधा ओम ढींगरा 31

लघुकथा

क्रांति के बाद

पारस दासोत 36

बदलाव

डॉ. श्याम सखा 'श्याम' 36

परिचय

माधव नागदा 36

विश्व के आँचल से

सूरीनाम की धरती पर धड़कता भारत

कविता मालवीय 37

ओरियानी के नीचे

तीन इंच के स्वर्ण फूल / युंग चांग

अनुवाद - सुधा अरोड़ा 40

कविताएँ

लालित्य ललित 42

नरेन्द्र व्यास 43

पूनम मनु 44

शार्दुला नोगजा 45

शोभा रस्तोगी 46

अनिल पुरोहित 47

ममता किरण 48

दोहे

रघुविन्द्र यादव 49

गीत

अर्चना पंडा 50

भाषांतर

स्पेनिश कवि खुआन रामोन खिमेनेज

सरिता शर्मा 51

अविस्मरणीय

अटल बिहारी बाजपेयी 52

गज़ल

चाँद शेरी 53

महेन्द्र कुमार अग्रवाल 53

डॉ. शम्भुनाथ तिवारी 53

हाइकु / सेदोका

भावना कुँअर 54

सुनीता अग्रवाल 54

गुंजन अग्रवाल 54

डायरी के पन्ने

कुछ पल नासिरा शर्मा के साथ

पुष्पा सक्सेना 55

व्यंग्य

न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी

हरीश नवल 58

पुस्तक समीक्षा

'सरस्वती सुमन' का हाइकु विशेषांक

डॉ. ज्योत्स्ना शर्मा 60

साहित्य और संवाद : एक चिंतन यात्रा

प्रो. डॉ. चंचल बाला 61

सरकती परछाइयाँ :

अनुभव की सहज अभिव्यक्ति

डॉ. सीमा शर्मा 62

ताजी बयार चली तो है

संतोष श्रीवास्तव 63

बदलती सोच के नए अर्थ : प्रवाहमयी शैली

संगीता स्वरूप 64

पुस्तकें 65

पत्रिकाएँ 66

साहित्यिक समाचार 67

काव्यचित्र शाला 72

विलोम चित्र 73

आखिरी पन्ना

सुधा ओम ढींगरा 74

'हिन्दी चेतना' को आप ऑनलाइन भी पढ़ सकते हैं :

http://www.vibhom.com/hindi_chetna.html

<http://hindi-chetna.blogspot.com>

फेसबुक पर 'हिन्दी चेतना' से जुड़िये

<https://www.facebook.com/hindi.chetna>

सदस्यता प्राप्त करने हेतु सदस्यता शुल्क (400) रुपये (एक वर्ष), 600 रुपये (दो वर्ष), 1500 रुपये (पाँच वर्ष) अथवा 3000 रुपये (आजीवन) आप 'हिन्दी चेतना' के बैंक एकाउंट में सीधे अथवा ऑनलाइन भी जमा कर सकते हैं।

Bank : YES Bank, **Branch :** Sehore (M.P.)

Name : Hindi Pracharini Sabha Hindi Chetna

Account Number : 041185800000124

IFS Code : YESB0000411

'हिन्दी चेतना' सभी लेखकों का स्वागत करती है। आप अपनी मौलिक रचनाएँ ही भेजें चित्र और परिचय के साथ। 'हिन्दी चेतना' एक साहित्य पत्रिका है, अतः रचनाएँ भेजने से पूर्व इसके अंकों का अवलोकन जरूर कर लें।

रचनाएँ भेजते समय निम्नलिखित नियमों का ध्यान रखें :

- 'हिन्दी चेतना' जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर में प्रकाशित होगी।
- प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा।
- पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी।
- रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा।
- प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक मंडल तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।



हिन्दी साहित्य में एक नवजीवन की लहर दौड़ रही है।

नववर्ष के आगमन पर बीते वर्ष पर नजर दौड़ाना इंसानी प्रवृत्ति है और एक स्वाभाविक प्रक्रिया। गत वर्ष 'हिन्दी चेतना' की टीम ने कई महत्वपूर्ण कार्य किए। अमेरिका की 'ढींगरा फ़ाउण्डेशन' के संरक्षण में हिन्दी चेतना अंतर्राष्ट्रीय साहित्य सम्मानों की शुरुआत हुई और टोरंटो (कैनेडा) में भव्य समारोह का आयोजन किया गया, जिसमें तीन प्रमुख साहित्यकार प्रो. हरि शंकर आदेश (उत्तरी अमेरिका, त्रिनिडाड व कैनेडा), महेश कटारे (भारत) और सुदर्शन प्रियदर्शनी (अमेरिका) को पुरस्कृत किया। अतिथि सम्पादक सुशील सिद्धार्थ के नेतृत्व में एक शोधपूर्ण 'कथा-आलोचक विशेषांक' का प्रकाशन हुआ।

इसके अतिरिक्त टीम के सदस्यों ने हिन्दी चेतना के विशेषांकों को पुस्तक का रूप दिया, जो शोधकर्ताओं के लिए अत्यंत उपयोगी होगा। शिवना प्रकाशन ने इन पुस्तकों के प्रकाशन का भार अपने कन्धों पर लिया। अत्यंत हर्ष हुआ; जब सम्पादक डॉ. सुधा ओम ढींगरा को उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान की ओर से 'हिन्दी विदेश प्रसार सम्मान' से सम्मानित किया गया और स्पंदन संस्था भोपाल की ओर से 'स्पंदन प्रवासी कथा सम्मान' सुधा जी को देने की घोषणा की गई।

सभी के प्रयास और सहयोग से पत्रिका प्रगति की ओर अग्रसर है। इसके लिए मैं हिन्दी चेतना की टीम को हृदय से धन्यवाद देता हूँ, जो तन-मन धन से इसके साथ जुटे हुए हैं।

शायद आप सभी प्रवासी हिन्दी प्रेमी मेरी इस बात से सहमत होंगे कि मोदी सरकार के पदार्पण मात्र से ही विदेशों में हिन्दी भाषा के प्रति जागरूकता में अभिवृद्धि हुई है। हिन्दी के प्रति देश में भी, जो उदासीनता वर्षों से दिख रही थी, आज उसके लिए भी लोगों के दृष्टिकोण में बदलाव आया है। हिन्दी साहित्य में एक नवजीवन की लहर दौड़ रही है। मॉरीशस में हिन्दी साहित्य के लिए पर्याप्त ठोस कदम उठाए गए हैं। विश्व स्तर पर हिन्दी की प्रगति

देखकर हृदय को प्रसन्नता होती है। मेरा विश्वास है कि नये वर्ष में हिन्दी का प्रयोग सभी क्षेत्रों में किया जाएगा। हमें हिन्दी का भविष्य उज्ज्वल प्रतीत हो रहा है।

पड़ोसी देश की अमानुषिक घटनाओं की सूचनाएँ पाकर मन बहुत पीड़ित हुआ। स्कूल के बच्चों को क्रूर तालिबानों ने बर्बरतापूर्वक गोलियों से उड़ा दिया। यह गत वर्ष की हृदय विदारक घटना है। इसके अतिरिक्त अपने देश में आए दिन जो बलात्कार, हत्याकांड, नक्सलियों द्वारा धोखे से लोगों की जान लेना और आतंकी गतिविधियों की भयावह तस्वीरें हमें यहाँ दिखाई देती हैं, सचमुच चिंता का विषय है। हम दूर ज़रूर बैठे हैं; पर देश की सुरक्षा और इसके भीतर-बाहर की समस्याओं से हम अनजान नहीं हैं। हम इनसे विचलित भी होते हैं। अफ़सोस है कि हम कुछ कर नहीं सकते।

हम दुआ कर सकते हैं, अराजकता के इस दौर में मानवता उन सबके हृदयों में समा जाए, जो क्रूर कृत्यों को अंजाम देते हैं। नववर्ष प्रेम और मुहब्बत की रोशनी से उनके हृदय के अँधेरे कोनों को रोशन कर दे; ताकि कहीं भी, दुनिया के किसी भी कोने में माँ की कोख न उजड़े, सीमा पर कोई बेटा, कोई भाई, किसी का पति शहीद न हो और हर लड़की स्वयं को सुरक्षित महसूस करे।

कुछ दिन पूर्व भारत सरकार ने भूतपूर्व प्रधान मंत्री अटल विहारी बाजपेयी और महामना मदन मोहन मालवीय को 'भारत रत्न' के सम्मान से सम्मानित किया। खेद की बात है, भारत में ऐसा माना जाता है कि मदन मोहन मालवीय को लोगों ने भुला दिया है। पर प्रवासियों ने उन्हें कभी नहीं भुलाया, हिन्दी चेतना ने महामना मदन मोहन मालवीय पर अक्टूबर २०१० को विशेषांक निकाला था। हम भारतवासी दुनिया के किसी कोने में रहते हों, लेकिन भारत हमारे हृदय में सदा ही समाया रहता है।

नववर्ष आप सबका सुखमय और शांतिमय हो। शुभकामनाएँ!!!

आपका,

श्याम त्रिपाठी

‘कथा-आलोचना’ अंक बहुत अच्छा

आपकी ऑनलाइन पत्रिका ‘हिन्दी चेतना’ का मैं नियमित पाठक हूँ। पत्रिका का १४ अक्टूबर २०१४ का ‘कथा-आलोचना’ अंक बहुत अच्छा बन पड़ा है। मेरा ध्यान ‘आलोचना से पहले’ शीर्षक में विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के लेख पर अधिक टिका। निश्चय ही आज की आलोचना का स्तर सराहनीय नहीं है। अधिकतर आलोचनाएँ आज रीव्यू (समीक्षा) के रूप में लिखी जा रही हैं। इनमें या तो रचना की स्तुति होती है या निंदा। जबकि आलोचना की स्थिति इन दोनों से परे है। आलोचना का दायित्व होता है लेखक और उसकी रचना में दूबना। आलोचना अध्ययन और अनुशीलन का एक तरीका भी है। ओशो का कथन उद्धृत करूँ तो बुद्ध ने जब उपनिषदों को छान डाला, कई दिशाओं से उसकी शिक्षा की परख कर ली, तब वह आलोचना में प्रवृत्त हुए। इतना धैर्य आलोचकों में होना ही चाहिए।

—शेषनाथ प्रसाद (भारत)

आलोचना पर एक सार्थक अंक

‘आलोचना विशेषांक’ को पढ़ गया हूँ, खुशी की बात यह है कि आपने वो काम कर दिखाया है, जो काम भारत में रह कर अनेक पत्रिकाएँ नहीं कर सकीं। सुशील सिद्धार्थ जी की भी जितनी तारीफ़ की जाए, कम है, उन्होंने मनोयोग से सामग्री संचित की, तभी इतना समृद्ध अंक संभव हो सका।

एक संघर्षशील लेखक होने के नाते आलोचना को लेकर मेरा यही मत रहा है कि अधिकतर आलोचनाएँ प्रायोजित ही होती हैं, पूर्वाग्रह से ग्रस्त होती हैं। आपने अपने सम्पादकीय में लिखा है कि ‘स्वस्थ आलोचना से रचनात्मक सुधार होता है’, यह बात ठीक है, मगर कितने आलोचक ऐसा काम करते हैं? जब तक लेखक आलोचक शरणम् गच्छामि न हो, आलोचक लेखक की कृति के बारे में कुछ लिखता ही नहीं। आपने अपना एक उदहारण दिया, मैं भी विनम्रतापूर्वक अपना उदहारण देना चाहता हूँ, मेरे छह उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। २०१३ में व्यंग्य उपन्यास ‘मीडियाय नमः’ (प्रभात प्रकाशन) और ‘टाउनहाल में नक्सली’ (यश

प्रकाशन) आया। इसके पहले ‘एक गाय की आत्मकथा’ प्रकाशित हुआ। 2014 में उसका नया संस्करण आया। ‘किताब घर प्रकाशन से कुछ साल पहले दो उपन्यास आए, ‘माफिया’ और ‘पॉलीवुड की अप्सरा’ मगर मैंने किसी भी अखबार में इन कृतियों के बारे में एक भी पंक्ति नहीं पढ़ी। हाँ, ‘माफिया’ पर ‘व्यंग्य यात्रा’ में ज़रूर संपादक प्रेम जनमेजय ने संतोषप्रद चर्चा कराई। क्या बाकी आलोचकों की नज़र से मेरी एक भी कृति नहीं गुजरी? ‘वर्तमान साहित्य’ में मेरी कुछ कहानियाँ प्रकाशित हुईं, मगर किसी भी पत्रिका में किसी भी आलोचक ने कोई जिक्र नहीं किया। क्या चर्चा के लिए आलोचक से रिश्ता गाँठना पड़ता है? हाँ, गाँठना पड़ता है, अगर मैं शातिर आलोचकों से संपर्क करता, अनुनय-विनय करता तो बेशक मेरा नाम भी कहानी और उपन्यास की चर्चा में कहीं शरीक हो जाता, अफसोस होता है कि अब लेखक को खुद आलोचक के पास पहुँचना पड़ता है। आलोचक रचना तक पहुँचता ही नहीं। जब तक आलोचक खोज-खोज कर कृतियों तक नहीं पहुँचेगा, अच्छी किताबें परिदृश्य से गायब ही रहेंगी, बार-बार कुछ नाम लेखक के रूप में चर्चित होते रहेंगे। आलोचक इतना अपढ़ भी होता है कि वो अपने से पहले जो आलोचक नाम लिख गए, फिर दोहरा देता है। यह आलोचना की भेड़चाल है। कोई एक नाम बार-बार आता है, तो एक हवा-सी उस लेखक या लेखिका के पक्ष में बन जाती है। आलोचकों के कारण एक रुपये के महत्व का लेखक सौ रुपये के महत्व का बताया जाता है। यानी की आलोचना के कारण अनेक लेखक चर्चा में बने हुए हैं। मेरा साफ़ मानना है कि जब तक आलोचना ईमानदार नहीं होगी, साहित्य में कमज़ोर लेखक जगह पाते रहेंगे और समर्पित लेखक हाशिये पर ही रहेंगे। यह कहने में संकोच होता है, मगर आज कहना पड़ रहा है कि कभी आलोचक लोग मेरे छह उपन्यास तो देखें, लगेगा कि एक लेखक किसी गहरी सामाजिकता और परिवर्तकामी भावना से लेखन करता है। ‘मिठलबरा की आत्मकथा’ (1999) पत्रकारिता में घुसे चापलूसों पर लिखा है, ‘माफिया’ (2003) में साहित्य जगत् में घुसे अभिजात्य वर्ग और साधक लेखकों की कथा कही है, ‘पॉलीवुड की अप्सरा’ (2007) में छोटे-छोटे राज्यों में पनपे फिल्मोद्योग का असली चेहरा बेनकाब

किया है। ‘एक गाय की आत्मकथा’ (2012) और (2014) में भारतीय गायों पर हो रहे अत्याचार को दर्शाया है, ‘मीडियाय नमः’ (2013) में बदलते पत्रकारिता के बदले चरित्र पर प्रहार किया है। ‘टाउनहाल नक्सली’ (2013) के माध्यम से मैंने नक्सलियों को आत्म समर्पण करके मुख्य धारा में शामिल होने का रास्ता सुझाया है (यह संयोग ही है कि उपन्यास के आने बाद से 200 से अधिक नक्सली आत्मसमर्पण कर चुके हैं)। हैरत में हूँ कि क्या किसी भी आलोचक की नज़र मेरे किसी भी उपन्यास पर नहीं गई? क्या मेरी किसी भी कहानी पर किसी का ध्यान नहीं गया?

यह मेरी व्यथा नहीं है, इसमें आपका दर्द भी है और अनेक लेखकों की पीड़ा भी निहित है। आलोचक की अनदेखी के कारण अच्छे लेखक हताश होते-होते टूट जाते हैं। मैं भी टूट रहा हूँ। इस विशेषांक के आने के बाद हो सकता है कि हमारे कुछ निष्पक्ष आलोचक उन लेखकों तक भी पहुँचेंगे ;जिन तक किसी कारण से अब तक नहीं पहुँच सके हैं, वे उन लेखकों तक पहुँच कर सच्चे आलोचक होने का धर्म निभाएँगे। इस अंक में कुछ लेख ऐसे पढ़े जो आलोचकों पर उँगली उठा रहे हैं, मगर ऐसे लोग भूल रहे हैं कि तीन उँगलियाँ उनकी तरफ भी उठी हुई हैं।

अंत में एक बार फिर आपको साधुवाद देना चाहता हूँ कि आलोचना जैसे महत्वपूर्ण कर्म पर आपने एक सार्थक अंक निकाला, विशेषांक कितना महत्वपूर्ण है, इसका अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि अब तक अपनी पीड़ा कहीं भी शेयर न करने वाला मेरे जैसा लेखक भी आज अपनी इतनी लम्बी प्रतिक्रिया दे रहा है।

‘हिन्दी चेतना’ इसी तरह अपने साहित्यिक दायित्व का निर्वाह करती रहे, यही कामना करता हूँ। ईश्वर आपको, सक्रिय रखे और इसी तरह उदारमना बनाए रखे।

—गिरीश पंकज, रायपुर (भारत)

सारगर्भित और रोचक

सुशील सिद्धार्थ के अतिथि संपादन में आया हिन्दी चेतना का नवीन अंक कथा-आलोचना पर आधारित है। विजय बहादुर सिंह, रोहिणी अग्रवाल, बलवंत कौर, असगर वजाहत, अर्चना वर्मा, राजी सेठ... वाकई भारी-भरकम सामग्री है। चूँकि मेरा

काम भी इसी से मिलता-जुलता है अतः पढ़ना अच्छा लग रहा है। और हाँ, संपादकीय तो मन की मौज के साथ लिखा गया है। गद्य का सुंदर नमूना। सुशील सिद्धार्थ जी की पैनी निगाह, स्पष्ट सोच-समझ और भाषा पर पकड़ का नमूना है उनका संपादकीय। विशेष बात है पत्रिका ने एक खास खंड प्रवासी साहित्य के लिए रखा है। आवरण सारगर्भित और रोचक है। हिन्दी चेतना टीम को बधाई!

-विजय शर्मा (भारत)

महत्त्वपूर्ण सामग्री से युक्त अंक

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सामग्री से युक्त अंक है। उपयोगी और संग्रहणीय। 'हिन्दी चेतना' की पूरी टीम को धन्यवाद व भाई सुशील सिद्धार्थ का आभार, इतनी उपयोगी सामग्री एक जगह उपलब्ध कराने के लिए।

-बलराम अग्रवाल (भारत)

कथाओं को समझाने की नई दृष्टि

पहली बार 'हिन्दी चेतना' का अंक मिला। कथा-आलोचना विशेषांक, समकालीन कथाओं को समझाने की नई दृष्टि प्रदान करता है। डॉ. विजय बहादुर सिंह की समीक्षा में रचनाकारों को लोक की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा है। लोक जीवन और लोक मानस रचनात्मकता के केन्द्र में होना चाहिए इससे कौन इंकार कर सकता है? सुभाष चंद्र ने "व्यंग्य लेखन मुख्य धारा का लेखन नहीं है मी लॉर्ड" में वाजिब चिंता व्यक्त की है। विमल चन्द्र पाण्डेय-सृजनधर्मिता में जिस स्वाद और सुख की तलाश कर रहे हैं, वह सही भी है और एक सच्चे लेखक के लिए ज़रूरी भी। पूजा प्रजापति का समीक्षात्मक लेख-समाज का जीवंत दस्तावेज एक ओर सुधा ओम ढींगरा की कहानियों और उनके परिवेश को चित्रित करता है, वहीं उनके पात्रों की मानसिकता को उधेड़ता हुआ कथात्मक संवेदना को व्याख्यायित करता है। लेखिका ने वहाँ की विसंगतियों को निर्भीकता से अंकित किया है।

-डॉ. महेन्द्र अग्रवाल, शिवपुरी (भारत)

चयन समिति को हृदय से साधुवाद

'ढींगरा फ़ाउण्डेशन-हिन्दी चेतना अंतर्राष्ट्रीय साहित्य सम्मान' की स्थापना के लिए हार्दिक

बधाई! चयनित एवं सम्मानित विद्वान प्रो. हरि शंकर आदेश जी, कहानीकार डॉ. सुदर्शन प्रियदर्शनी एवं श्री महेश कटारे जी वस्तुतः इस श्रेष्ठ सम्मान के अधिकारी हैं। आपके चयन समिति को हृदय से साधुवाद। कथा-आलोचना विशेषांक मिला। आभार। सुशील सिद्धार्थ जी के संपादन को नमन। रोहिणी अग्रवाल, अर्चना वर्मा, असगर वजाहत, निरंजन देव शर्मा के लेख विशेष लगे।

-उषा राजे सक्सेना (यूके)

अंक पठनीय ही नहीं, संग्रहणीय भी है

वैसे तो अंतर्जाल पर आते ही हम अपनी प्रिय पत्रिका को पढ़ने लगते हैं, किन्तु जो तन्मयता और एकाग्रता की संतुष्टि प्रिंट पत्रिका को पढ़ने में होती है, उसकी बात ही अलग है।

अभी तक मैं पिछले वर्ष के 'नई सदी का कथा समय' विशेषांक में प्रकाशित मंजुला पाण्डेय की कहानी 'अति सूधो सनेह को' के द्वारा मन मस्तिष्क पर छाए प्रभाव से अलग नहीं हो पाई हूँ। अगर बिमल रॉय जीवित होते तो इस कहानी पर फ़िल्म अवश्य बनती। प्रसन्नता की बात यह है कि उसी कड़ी में 'कथा-आलोचना विशेषांक' हाथ में आ गया। इस विशेषांक में ऐसी ही कुछ कहानियों को लिया गया है, जिनके कुछ अंश पढ़ कर पाठक को पूरी कहानी पढ़ने की उत्सुकता होती है। आलोचना सार्थक हो तो लेखक को दिशा मिलती है और पाठकों को अपनी रुचि पहचानने में सहायता। इस विशेषांक में विभिन्न रचनाकारों की रचनाओं पर जो समीक्षात्मक आलोचना की गई है उसे हमारे जैसे पाठक केवल पढ़ते ही नहीं बल्कि मनन भी करते हैं। इस सराहनीय कार्य के लिए अतिथि संपादक सुशील सिद्धार्थ एवं सभी लेखक बधाई के पात्र हैं। इन आलोचकों के आलेखों द्वारा कहानी लेखन के मूलभूत तत्त्वों पर बड़ी सूक्ष्मता से प्रकाश डाला गया है। यह अंक पठनीय ही नहीं, संग्रहणीय भी है। ऐसे विषयों को हम पाठकों तक पहुँचाने के लिए 'हिन्दी चेतना' की पूरी टीम का आभार।

उत्तर प्रदेश के हिन्दी संस्थान द्वारा 'हिन्दी विदेश प्रसार सम्मान' से पुरस्कृत करने की घोषणा और साथ ही भोपाल की 'स्पंदन' साहित्यिक संस्था द्वारा सम्मानित करने की सूचना के लिए सुधा जी को हार्दिक बधाई। इस घोषणा ने हम सब प्रवासी साहित्यकारों को गौरवान्वित किया है। यह एक

लेखक के अथक परिश्रम और लगन का सही मूल्यांकन है। इसके साथ ही 'हिन्दी चेतना' के सभी पाठकों को नव वर्ष की मंगल कामनाएँ!!

-शशि पाधा (अमेरिका)

तथ्यात्मक व प्रभावी

रेनू यादव का लेख 'प्रवासी कथाओं में स्त्री विमर्श' जो 'हिन्दी चेतना' के कथा आलोचना विशेषांक में प्रकाशित हुआ है, आज ही पढ़ा। बड़ा तथ्यात्मक व प्रभावी है। प्रवासी साहित्य की अवधारणा को व्याख्यायित करते हुए स्त्री लेखिकाओं की कहानियों के माध्यम से पूरब से लेकर पश्चिम तक की संस्कृति के अंतर्द्वंद्व को विवरणात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। स्त्री विमर्श की तरह प्रवासी विमर्श भी क्या खड़ा हो पायेगा! यह एक नई बात है, खैर प्रवासी साहित्य की पहचान की चुनौतियों का समापन कैसे होगा यह विचारणीय है। हालाँकि प्रवासी भूमि पर रचे जा रहे साहित्य में प्रवासी लेखक की निर्बाध्यता वास्तव में सराहनीय है। अंत में स्त्री विमर्श के दृष्टिकोण के पैमाने पर परखा गया यह लेख सच प्रशंसनीय है।

-मुलायम सिंह, नई दिल्ली (भारत)

भारत की पत्रिकाओं में एक विशिष्ट स्थान

भारत से वापिसी की रात जेट-लैंग के कारण नींद आना कठिन था, तभी 'हिन्दी चेतना' के जुलाई-अंक 2014 पर दृष्टि पड़ी। हिन्दी चेतना मेरी प्रिय पत्रिका है। इसमें चयनित सामग्री हिन्दी से उदासीन लोगों के मन में भी हिन्दी के प्रति स्वाभिमान की चेतना जाग्रत कर देती है। कलात्मक आवरण पृष्ठ के साथ अभिनव शुक्ल की पंक्तियों ने मुग्ध कर दिया। श्याम त्रिपाठी जी का 'कहाँ से सफ़र शुरू हुआ और कहाँ हम पहुँच गए' बहुत सारगर्भित कथन है। पत्रिका में संकलित सामग्री ने मन को इस तरह से बाँधा कि पूरी पत्रिका सवरे तक पढ़ डाली।

रीता कश्यप की कहानी 'एक ही सवाल' जीवन के कटु सत्य को उजागर करती है। अपनों द्वारा वृद्ध पिता की मृत्यु की कामना एक दुःखद सत्य है। आस्था नवल की कहानी एक गृहिणी के जीवन की कहानी है; जो अपने पति और बच्चों की दुनिया में लीन है, यहाँ तक कि उसकी पहचान सुधीरे

की पत्नी या बच्चों की माँ से है। उसका नाम भी कोई नहीं लेता। अमरीका से रूपा के आने से उसके जीवन में आने वाला परिवर्तन बहुत स्वाभाविकता से दर्शाया गया है। शशि पाधा का संस्मरण बहुत प्रेरक और सार्थक है। डॉ. मारिया नेज्येशी का विजया सती द्वारा लिया गया साक्षात्कार यह स्पष्ट करता है कि हिन्दी भाषा में वह चुम्बकीय शक्ति है, जिसने सुदूर विदेश में रहने वाली मारिया को भी प्रभावित और आकृष्ट किया है। 'क्योंकि औरतों की नाक नहीं होती' एक मार्मिक अंतर को छूने वाला आलेख है, काश! औरत को नाक मिल सकती। नव अंकुर में फादर्स डे जीवन का दुःखद सत्य है, पत्रिका में कहानी भीतर कहानी में सुदर्शन प्रियदर्शिनी की कहानी पर सुशील सिद्धार्थ की गंभीर विवेचना, साधना अग्रवाल का दिव्या माथुर की कहानी पर अंतर्पाठ, कमल नाथ का व्यंग्य, सिराजोदीन का आलेख, भाषांतर में अनूदित कविता, भारतेन्दु हरिश्चंद्र का परिचय, कविताएँ, ग़ज़ल, हाइकु जैसी समस्त स्तरीय सामग्री के कारण हिन्दी चेतना अब भारत की पत्रिकाओं में एक विशिष्ट स्थान रखती है।

अंतिम पृष्ठ तो सुधा जी का हमेशा विशेष आकर्षण का केंद्र होता है। वह अपने एक पृष्ठ में कुछ ऐसी महत्वपूर्ण बातें कह जाती हैं, जो सोचने को विवश करती हैं। इस अंक में भी 'आलोचना मनुष्य की मूल प्रवृत्ति है' जैसे गंभीर विषय को बड़े ही सहज और स्वाभाविक रूप में स्पष्ट कर के चेतना के आगामी अंक की घोषणा की है। बधाई के साथ पत्रिका की उत्तरोत्तर सफलता की कामना।

-पुष्पा सक्सेना (अमेरिका)

हिन्दी चेतना का एक पथ-चिह्न

'हिन्दी चेतना' का कथा-आलोचना विशेषांक अपने आप में एक मील पत्थर है। कहानी को सभी तरह की सूलियों पर चढ़ा कर देखा गया है पर फिर भी कहीं अधूरा लगता है। सभी कहानीकारों की सशक्त रचनाओं को छू पाया हो, ऐसा नहीं लगता; किन्तु यह संपादक या संरक्षकों का विषय नहीं है, आलोचकों की अपनी दृष्टि है। सारे लेख कहीं न कहीं कितने ही नए आयाम खोलते हैं, मार्ग दर्शन करते हैं और हिंदी के महारथियों का अपना दृष्टिकोण अभिव्यक्त करते हैं। इस अंक को मैं हिन्दी चेतना का एक पथ-चिह्न कहूँगी; जिसमें

जम कर कथा साहित्य को विभिन्न कोनों से परखा गया है। हिन्दी चेतना को सुशील सिद्धार्थ जैसे समालोचक के अतिथि सम्पादन में एक नई दिशा मिली है। साधुवाद !

-डॉ. सुदर्शन प्रियदर्शिनी (अमेरिका)

सब कुछ 'कन्फ्यूज़' लगा

हिन्दी चेतना का पुराना पाठक हूँ और इसके हर विशेषांक को मैंने सराहा है। समय-समय पर पत्र भी लिखे हैं। हिन्दी चेतना की टीम बहुत परिश्रम से सब विशेषांक तैयार करती है; जिनमें शोधार्थियों के साथ-साथ पाठकों का भी ध्यान रखा जाता है, विशेषतः उन पाठकों का जो साहित्य में गहरे नहीं डूबे होते पर हिन्दी भाषा और उसके साहित्य से उन्हें लगाव है और वर्षों से हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं से जुड़े हुए हैं। तात्पर्य आम पाठक से है, जो लेखक को, कवि को शोहरत दिलवाते हैं, जरूरी नहीं होता कि वे लेखक या कवि होते हैं या साहित्य में पैठ रखते हैं पर साहित्य की समझ उन्हें जरूर होती है।

विषय कितना भी कठिन हो अगर उसे कुशलता से प्रस्तुत किया जाये तो वह जन मानस की समझ में आ जाता है, उसका अपना विषय बन जाता है। वर्ष २०१३ का विशेषांक 'नई सदी का कथा समय' को पंकज सुबीर ने इतना मनोरंजक बना दिया था कि शोधार्थियों के साथ-साथ आम पाठक भी इससे जुड़ गया था। सामग्री का चयन और किस-किस से लेख लिखवाने है, संपादक की पैनी दृष्टि का परिणाम होता है। २०१४ का कथा-आलोचना विशेषांक, सुशील सिद्धार्थ के अतिथि संपादन में तैयार हुआ। सुशील सिद्धार्थ के संपादन में और पत्रिकाओं के विशेषांक मैंने पढ़े हैं। अच्छे अंक तैयार किये थे।

पर इस अंक में सब कुछ 'कन्फ्यूज़' लगा। अतिथि संपादक देना क्या चाहते हैं, उन्हें स्पष्ट नहीं। आलोचक लिख क्या रहे हैं, वे क्लियर नहीं। लेखक क्या कह रहे हैं, उन्हें पता नहीं। पूरा विशेषांक पढ़ने के बाद यही लगा सब 'कन्फ्यूज़िआ' हुए हैं। और अंत में पढ़ने वाला भी 'कन्फ्यूज़िआ' जाता है। आलोचना कैसी होनी चाहिए, सही और गलत आलोचना क्या होती है, यह सब समझाने में विशेषांक असफल रहा है। जो सामग्री भरी गई है वह तो आलोचना शास्त्र में भी मिलती है।

काश! कहानी देकर साथ में आलोचना दी जाती और उसे अलग-अलग एंगल से समझाया जाता। रचनाकारों को पता चलता कि उनकी रचनाओं पर कैसी समीक्षा होनी चाहिए और आलोचकों को समझ आती कि उन्हें आलोचना कैसे करनी है। यह तब होता अगर संपादक का विज्ञान क्लियर होता।

मेरा किसी से कोई दुराभाव नहीं, विशेषांक पढ़ने के बाद लिखने से रहा नहीं गया।

-डॉ. हरजिन्दर सिंह, नई दिल्ली (भारत)

क्षमा याचना सहित

कथा-आलोचना विशेषांक प्राप्त हुआ। क्षमा याचना सहित लिख रहा हूँ कि विशेषांक को पढ़ते हुए अंत तक सिर दुखने लगा। समझ नहीं पाया कि ऐसे विशेषांकों से साहित्य का क्या उद्धार होता है।

डॉ. नरेन्द्र कोहली के विशेषांक से मैं हिन्दी चेतना के साथ जुड़ा। बाद में मदन मोहन मालवीय, क्रामिल बुल्के, प्रेम जनमेजय, लघुकथा, नई सदी का कथा समय, इन विशेषांकों का मैंने भरपूर आनंद उठाया। मेरी अलमारी में ये सहेज कर रखे हुए हैं। अभी भी फुर्सत के पलों में इन्हें पढ़ता हूँ। निवेदन है कि भविष्य में विशेषांक निकालते समय हम पाठकों का ध्यान जरूर रखें और ऐसे विषय को चुने, जो सबके मन भाए।

-अदीप श्रीवास्तव (शिकागो, अमेरिका)

लेखकों से अनुरोध

बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फाइल अथवा वर्ड की फाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ या स्कैन की हुई जेपीजी फाइल में नहीं भेजें। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना जरूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। चित्र की गुणवत्ता अच्छी हो तथा चित्र को अपने नाम से भेजें। पुस्तक समीक्षा के साथ पुस्तक आवरण का चित्र, रचनाकार का चित्र अवश्य भेजें।

-सम्पादक



विश्व प्रसिद्ध वरिष्ठ कथाकार, उपन्यासकार मृदुला गर्ग किसी परिचय की मोहताज नहीं। मृदुला जी के सात उपन्यास-उसके हिस्से की धूप, वंशज, चित्तकोबरा, अनित्या, मैं और मैं, कठगुलाब, मिलजुल मन, ग्यारह कहानी संग्रह-कितनी कैदें, टुकड़ा-टुकड़ा आदमी, डैफोडिल जल रहे हैं, ग्लेशियर से, उर्फ सैम, शहर के नाम, चर्चित कहानियाँ, समागम, मेरे देश की मिट्टी अहा, संगति विसंगति, जूते का जोड़ गोभी का तोड़, चार नाटक-एक और अजनबी, जादू का कालीन, तीन कैदें और सामदाम दंड भेद, दो निबंध संग्रह-रंग ढंग तथा चुकते नहीं सवाल, एक यात्रा संस्मरण-कुछ अटके कुछ भटके तथा एक व्यंग्य संग्रह-कर लेंगे सब हज़म प्रकाशित हुए हैं।

मृदुला गर्ग को हिंदी अकादमी द्वारा साहित्यकार सम्मान, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा साहित्य भूषण सम्मान, सूरीनाम में आयोजित विश्व हिन्दी सम्मेलन में आजीवन साहित्य सेवा सम्मान, कठगुलाब के लिए व्यास सम्मान तथा कठगुलाब के लिए ही ज्ञानपीठ का वाग्देवी पुरस्कार, साहित्य अकादमी पुरस्कार उनकी कृति 'मिलजुल मन' उपन्यास के लिए प्रदान किया गया। उसके हिस्से की धूप उपन्यास को तथा जादू का कालीन को मध्य प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत किया गया।

ईमेल: mridula.garg7@gmail.com

मोबाइल: ९८११७६६७७५

संपर्क: ई ४२१ (भूतल) ग्रेटर कैलाश-२, नई दिल्ली-११००४८

सितम के फ़नकार

मृदुला गर्ग

खाने की मेज़ के पास, जिस कुर्सी पर मैं बैठी थी या कहना चाहिए कि जिस कुर्सी पर, बतौर हिन्दुस्तान से आए मेहमान, इसरार करके जीवन वर्मा ने मुझे बिठलाया था, उसके ठीक सामने, दीवार पर एक लम्बा-चौड़ा चित्र टँगा हुआ था। ४० बाय ३० इंच का; इतना बड़ा कि भरसक कोशिश करके भी, उससे नज़र हटाई नहीं जा सकती थी। दायें-बाँयें जितनी दूर तक आँखों को घुमाया जा सकता था, घुमा लेने पर भी नज़र चित्र से फिरती न थी; कोई न कोई हिस्सा दृष्टि में समाये रहता था। आप कहेंगे नज़र फेरने की ज़रूरत क्या थी? उम्दा मेहमाननवाज़ी की रिवायत है कि मेहमान को दीवार पर जड़ी बेशक्रीमती पेन्टिंग के सामने बिठलाया जाए। जानती हूँ। जापान तक हो आई हूँ, जहाँ ऐसी हर रिवायत को बिला शर्त, बिला बहस अंजाम दिया जाता है। मेहमान के महत्त्व का अंदाज़ा इसी से लगाया जाता है कि उसकी कुर्सी, कमरे की एकमात्र बेहतरीन पेन्टिंग, पुष्प सज्जा या अन्य कलाकृति से कितनी दूर और किस कोण पर है। कलाकृति मूर्ति हो, पेन्टिंग हो या फूलों की सजावट, होती कमरे में एक ही है, जिससे इधर-उधर ताक कर, उससे बेनियाज़ न हुआ जाए। पर इस वक़्त मैं जापान नहीं अमेरिका में थी। न्यू यॉर्क के एक मँहगे, आलिशान सबर्ब में। घर न जापानी का था, न अमरीकी का, बल्कि विशुद्ध भारतीय का था। विशुद्ध मानी जन्म से... पर क्या अमरीकन नागरिक बन चुके एन.आर.आई या प्रवासी भारतीय को हम विशुद्ध कह सकते हैं, भले जन्म से? अमरीका में नई-नकोर दूसरी ज़िन्दगी मिलती है न? खालिस अमरीकी कहलवाने की क़िशिश और कोशिश, क्या कुछ नहीं करवा जाती! फिर भी मेरे मेज़बान, जीवन वर्मा, बेचारे क्रिस्मत के मारे, थे जन्म से विशुद्ध भारतीय। माँ भारतीय, पिता भारतीय, नाना-नानी, दादा-दादी भी भारतीय। दूर-दूर तक विदेशी खून का कतरा उनकी वंश बेल में दाख़िल नहीं हुआ था। यह सब बकवास मैं क्यों सोचे जा रही थी? मैं नस्ली शॉविनिस्ट नहीं हूँ, बिल्कुल नहीं; न कभी थी, न कभी हूँगी। मेरे ज़्यादातर दोस्त-अहबाब मिली-जुली नस्ल के औरत-मर्द हैं; इस तरह कि उनके माँ-बाप अलग-अलग मुल्कों और क़ौमों के बाशिन्दे हैं। उस वक़्त ये फ़िज़ूल ख़ुराफ़ात सोचने का मकसद था, चित्र से ध्यान हटाना। बार-बार एक ही विचार मन में कौंध रहा था। इसे खाने की मेज़ के सामने लगाने की क्या तुक थी? घर में और कहीं जगह नहीं मिली? मेरे हाथ में होता तो कहीं भी न लगाती। जानबूझकर मैं न चित्र को ज़ेहन में उतार रही थी, न नज़रअंदाज़ कर रही थी। जो हो रहा था, खुद-ब-खुद हुए जा रहा था। उस चित्र की फितरत ही ऐसी थी। उसे नज़र की ओट न कर पाने की खलिश, मुझे निवाला नहीं निगलने दे रही थी। बेख्याली में जो एक-दो लुकमे शुरू में खा लिये थे, उनसे

इतना कह सकती थी कि जो बना था, ठीक-ठाक था। उतना लज़ीज़ नहीं जितना मेज़बान ने उसकी तारीफ़ में फ़रमाया था, पर बेस्वाद कतई नहीं। जीवन वर्मा ने बड़ी आजिज़ी से मुझे समझाया था कि वह तेल में सना, ज़रूरत से ज्यादा पका बेहूदा हिन्दुस्तानी व्यंजन नहीं बनाने जा रहा था। यह ज़रूर कोई यूरोपीय डिश होगी, पास्ता-वास्ता जैसी आम फ़रहम नहीं, एकदम गूरमे... क्या तो नाम लिया था उसने... चिमीचुरी? उसने जो कहा हो, मैंने वही सुना था और दुबारा नाम पूछने की हिम्मत नहीं हुई थी। जो भी वह थी, बढ़िया ही बनी होगी, इतना गुमान मुझे था। अगर मुझे उतनी लज़ीज़ नहीं लग रही थी जितनी लगनी चाहिए थी, तो क्रसूर, पकाने वाले या पके हुए का नहीं, मेरी ज़बान की कमतरी का था। फिर भी यानी उस कमतरी के बावजूद, न खा पाने लायक़ उसमें कुछ नहीं था। न ज्यादा लहसुन, न बैंगन, न नाक्राबिले बर्दाशत अफ़लातूनी महक। हाँ, कुछ कच्ची ज़रूर थी, पर क्योंकि जीवन पहले ही बतला चुका था कि ज़रूरत से ज्यादा पकाना, हिन्दुस्तानी बेहूदगी की निशानी थी, इसलिए कचास से नज़र चुराने में मैं कामयाब हो गई थी। पशेमां जो कर रहा था, वह नज़र में गड़ा, सामने दीवार पर टंगा, ४० बाय ३० इंची चित्र था।

एक बार सोचा पूछूँ, क्या मैं कुर्सी बदल सकती हूँ? पर पूछा नहीं। सोच पूरा भी नहीं हुआ कि वह बेहूदा सवाल करने से चेत गई। मेज़ के इर्द-गिर्द सिर्फ़ मेज़बान दम्पति, जीवन और सुरुचि नहीं, दो और मेहमान बैठे थे, जीवन के दोस्त मुल्लीधर गुप्त और उनकी बेटी सपना। कुर्सी बदलने को कहती तो उसीसे, जो चित्र के बाजू बैठा था, सामने नहीं। यानी मेज़बान-पत्नी सुरुचि से या मेहमान मुल्लीधर गुप्त से। मेज़बान मर्द की बगल से उठ कर मेहमान मर्द की बगल में जा बैठना अभद्र लगता, नहीं? ख़ास कर जब मैं वहाँ बिला शौहर बैठी थी, अकेली औरत। अभद्र कहलवा भी लेती, पर जानती थी, जीवन उसे बेहूदा हिन्दुस्तानियत कह कर नवाज़ेगा। 'हाँ-हाँ ज़रूर। जानता हूँ, हिन्दुस्तान में उठने-बैठने के तौर-तरीकों को तरज़ीह देने का रिवाज नहीं है।' न मुझे हिन्दुस्तानी होने से एतराज़ था, न बेहूदा होने से। पर बेहूदा हिन्दुस्तानियत से नवाज़ा जाना कुबूल न था।

लिहाज़ा मैं सुनहरे बेल-बूटे वाली बोनचाइना



की प्लेट पर नज़रें गड़ाये चिमीचुरी नामक या भ्रामक व्यंजन के टुकड़े इधर-उधर घुमाती बैठी रही।

'कैसी बनी है?' सुना जीवन पूछ रहा था। जी, सुरुचि नहीं, जीवन। सबसे पहली बात उसने यही कही थी 'पोंगापंथी हिन्दुस्तानियों की तरह यहाँ मर्द खाना पकाने या घर का काम करने से परहेज़ नहीं करते। पर चूँकि मैं पकाता बढ़िया हूँ, इसलिए वही करता हूँ; छोटे काम सुरुचि निबटा लेती है।'

'शेफ़ हैं शेफ़!' सुरुचि ने कहा था, दाद दे कर या तंज से, स्पष्ट नहीं हुआ था।

ज़ाहिर था, शेफ़ की बनाई डिश में दिलचस्पी शेफ़ की ही होगी।

'कैसी बनी है?' उसने दुहराया तो मुझे अपनी बदतमीज़ी का अहसास हुआ; जवाब देने के बजाय मैं बदबख्त यह सोच रही थी कि जब मुझे यही नहीं पता कि बनने पर उसे कैसा लगना चाहिए तो यह कैसे बतलाऊँ कि बनी कैसी है?

हिन्दुस्तानी पूरी-तरकारी, हलवा, छैना पायस, ढोकला, इडली, भरवाँ करेला होता तो कह सकती थी, तला या भुना ठीक था कि नहीं, मुलायम या करारा कम-ज्यादा था; मिर्च मसाला तीखा या फीका था। पर यह उन जैसा बेहूदा व्यंजन नहीं था। पता नहीं इसे कम या ज्यादा भूना या उबाला गया भी था या नहीं? कहीं रेयर बीफ़ की तरह कच्चा का कच्चा तो नहीं पेश कर दिया गया? अब मुझे नीची नज़र भी उबकाई आने को हुई। किसी तरह भेंगी नज़र से, न यहाँ न वहाँ देख, खासे नाटकीय अंदाज़ से कहा, 'सुपर्ब!'

पता नहीं क्या ग़लती हुई कि सुरुचि खिलखिला कर हँस दी, बोली, 'सब यही कहते हैं, टेन्डर्लोइन है जनाब!' अचरज कि इतनी खिली-खिली हँसी में भी व्यंग्य झलक सकता है। हो सकता है मेरे फितूरी दिमाग़ को लगा हो।

जीवन ने एक जलती नज़र उसकी तरफ़ फेंक कर मुझसे कहा, 'इतने बरस हो गये पर सुरुचि अब तक अपनी माँ के बनाये आलू के पराँठों और दही भल्लों की मुरीद है। बेचारी उनसे ऊपर उठ ही नहीं पाई। बनाती भी वही सब है।'

'हैं क्या?' मैंने दबी ज़बान से सुरुचि से पूछा। 'बाद में,' उसने चुपके से जवाब दिया।

'टेन्डर्लोइन क्या होता है, बीफ़ तो नहीं?' मैंने ज़बान कुछ और दबाई।

'नहीं, जीवन पक्के हिन्दू हैं। यह वाला टेन्डर, चिकन चिमीचुरी का है, हेल्थ की ख़ातिर कुछ भाजी-तरकारी भी मिला दी गई है।' वह फिर तंज़िया हँसी हँसी।

चिकन तो ठीक है, चिमीचुरी क्या होता है, मैंने नहीं पूछा; जीवन बुरा मान जाता। मुझे यक्रीन था उसने काफ़ी विस्तार से उसके बारे में व्याख्यान दिया होगा; मेरा ही ध्यान इधर-उधर बिला गया होगा। जब भी वह भारतीय काहिली, गरीबी, पिछड़ेपन के हवाले से अमरीकी ज्ञान-विज्ञान, आर्थिक विकास, आरामदेह रहन-सहन के कसीदे काढ़ते हुए, अमरीकी हेल्थ फूड और यूरोप के गूरमे खान-पान तक आता, मेरा ध्यान पहले चरण पर ही बिला जाता, कमबख्त मैं हिन्दुस्तानी, हिन्दुस्तान में अटकी रह जाती, गूरमे छोड़, हेल्थ तक कान में न पड़ता।

मैंने फिर आँखें प्लेट पर टिकाई और चिकन चिमी की चुरी बनाने में लगी। पर लाख न चाहने पर भी नज़र बार-बार चित्र की तरफ़ जाती रही।

'आप हिन्दुस्तान की किस स्टेट से हैं?' कानों में पड़ा, मुल्लीधर गुप्त पूछ रहे थे।

जवाब देने के लिए उनकी तरफ़ देखना लाज़िमी था। मतलब, चित्र को भी देखो। अनदेखा करने की कोशिश में मनोयोग से चिकन चिमीचुरी मुँह में डाली और उचारा, 'उत्तर प्रदेश...कानपुर।'

'हम भी यू.पी के हैं,' उन्होंने ऐसे कहा जैसे उत्तर प्रदेश को यू.पी बना कर, उस पर और मुझ पर करम कर रहे हों।

'मेरा ख्याल था, आप अमरीका, न्यू यॉर्क से

हैं,' मैंने कहा।

वे तृप्त भाव से बिहँसे मानो महानता का तमगा पहना दिया गया हो।

'मैं अपनी पत्नी को केरल के आश्रम में छोड़ कर आया हूँ, आप कभी गई हैं वहाँ?'

आश्रम में! क्यों? वे तो बूढ़े नहीं लगते कतई, यानी पचास के आसपास होगी उम्र। फिर पत्नी क्योंकर बूढ़ी होगी? हो भी सकती हैं; मान लीजिए कि वे खाती हों हिन्दुस्तानी बेहूदगी और ये, अमरीकन हेल्थ फूड! तब वे पचास में साठ की लग सकती हैं और ये सत्तर में पचास के। मगर ये चिकन चिमीचुरी तो हेल्थ फूड नहीं गूरमे है (किस मुल्क की, ठीक से सुना नहीं, पर इतालवी या फ्रान्सीसी नहीं है, इतना अहसास उसके तबील तबिरे से है)। जैसे मुरलीधर उस पर हाथ साफ़ कर रहे थे, क्या हरिद्वार का कोई पण्डा करता। गौरतलब बात यह थी कि उन्हें चित्र नहीं देखना पड़ रहा था। देखते भी तो ज़रूरी नहीं था कि मेरी तरह खाने से बेरुखी हो जाती। अपनी फ़ितरत दूसरों पर क्यों थोप रही हूँ? छोड़ परे; दूसरे सवाल पर ध्यान दे, आश्रम में छोड़ा क्यों और छोड़ा तो उत्तर प्रदेश छोड़ केरल में क्यों?

'केरल गई हो कभी?' मेरी तन्द्रिल हालत का जायज़ा ले, सुरुचि ने सवाल दुहराया; मेरा नहीं उनका। मैंने तो सोचा भर था, पूछा नहीं। लगा, सुरुचि अनकहे को सुनने में खासी उस्ताद थी।

'हाँ गई हूँ। कोच्चि, तिरुवनन्तपुरम, कोषिकोड।'

'हम तो सिर्फ़ कोचिन, त्रिवेन्द्रम और कालीकट गये हैं।'

'एक ही बात है, ये उनके मलयाळम नाम थे और अब भी हैं।'

'होंगे।' उन्होंने कन्धे उचकाये, 'हम अंग्रेज़ी नाम ही जानते हैं।'

'जाहिर है, मैंने हँसी रोकी और सुरुचि की तरफ़ देखा। वह ज़रूर हँस रही होगी। पर नहीं; वह बिल्कुल संजीदा थी, शर्मसार और गमगीन, हँसी से कोसों दूर। प्लेट में नज़रें गड़ाये, चिकन चिमी की चुरी बना रही थी।

'उन्हें टर्मिनल कैंसर है,' वह मेरे कान में धीमे से फुसफुसाई कि मुरलीधर ने उसी बात को जोर से उचार दिया।

मैं सकते में आ गई। न चाहते हुए भी मुँह से

निकल गया, 'वहाँ कौन है उनके पास?'

सोचा पत्नी वहाँ मर रही है, तो पति यहाँ बैठा चिकन चिमीचुरी क्यों उड़ा रहा है? आखिरी वक्रत में उसके पास क्यों नहीं है?

'सच्चिदानन्द आश्रम के तमाम लोग हैं। त्रिवेन्द्रम का वह नेचुरोपैथी आश्रम दुनिया भर में मशहूर है।'

'वहाँ जाने से पहले हमने गूगल करके उसके बारे में सबकुछ मालूम कर लिया था,' बेटी सपना ने सगर्व जोड़ा।

'वे एकदम नेचुरल तरीके से उनका इलाज कर रहे हैं, बिना पेनकिलर्स, ड्रग्स, कीमो, रेडियेशन वगैरह।'

'पर दर्द? दर्द और अकेले!' मैं लफ़फ़ाज़ हिन्दुस्तानी बेहूदगी पर उतर आई।

'वे हैं न? वे कहते हैं मन पर अंकुश रखो तो दर्द से भी छुटकारा मिल सकता है।'

'मिला?'

'शायद,' उन्होंने कौंचा-भर चिकन चिमीचुरी अपनी प्लेट में और पलटी। सॉरी, कौंचा नहीं सर्विंग स्पून।

'आप उनके पास क्यों नहीं हैं,' मेज़ के नीचे जीवन के पैर के टोहके को नज़र अंदाज़ करके मैं लगी रही।

'यह उनका प्राइवेट मामला है,' जीवन ने फुसफुस करके घुड़का।

जीवन की चीं-चीं आवाज़ मुरलीधर की दमदार आवाज़ के नीचे दब गई, 'मैं! मैं कैसे जा सकता



हूँ! इतना बड़ा बिजनेस है, सिर खुजाने की फुर्सत नहीं है। केरल तक आने-जाने में पन्द्रह दिन खप गये। कितना नुकसान हुआ! रात-रात जग कर काम किया तब जा कर भरपाई हुई।'

'और तुम?' मैं बेटी से मुखातिब हुई।

'मैं?' वह जैसे आसमान से गिरी, 'मैं अपनी कम्पनी के पी.आर विभाग की हेड हूँ। साल में कुल पन्द्रह दिन की छुट्टी मिलती है।'

'यह हिन्दुस्तान नहीं है कि जब चाहो छुट्टी मार कर बैठ जाओ। यहाँ जितनी छुट्टी मिलने का नियम हो, उतनी ही मिलती है। भाई-भतीजावाद नहीं चलता।' जीवन ने तुर्श सुर में बाधा दी पर सपना अपनी रौ में कहती गई, 'इस साल सारी छुट्टी केरल में बिताई। एक दिन के लिए रिलैक्स करने कहीं नहीं गई। मन ही नहीं हुआ। इससे ज़्यादा मैं क्या कर सकती हूँ,' अंतिम बात तक आते-आते वह रुआँसी हो गई। 'मैंने कहा था मम्मी को यहीं रहने दें, पेन मेनेजमेन्ट कितना विकसित हो गया यहाँ। नर्स रख लेंगे, रात दिन की अलहदा, दो। और वीकएण्ड पर तो हम, कम से कम मैं उनके पास रह सकती हूँ। पर डैडी ने कहा, वहाँ स्पिचुअल अप्रोच है, सेवा भाव है, उनकी नेचुरल पद्धति यूनीक है और...और हो सकता है... वहाँ वे ठीक हो जाएँ। उन लोगों की ईश्वर पर आस्था है, इसलिए ईश्वर की भी...उन पर... अनुकम्पा हो...ती ...है... अब वह रो ही तो दी।

मुरलीधर ने बहुत प्यार से एक कौंचा चिकन चिमीचुरी उसकी प्लेट पर उलटाई, कहा, 'कितनी लाजवाब बनी है, नहीं, अर्जन्टीना के 'पारिल्ला' में भी नहीं मिलेगी।'

ओह तो अर्जन्टीना की डिश है यह! गारत हो दिमाग! कमबख्त डिश कहीं की हो, क्या फ़र्क पड़ता है। पर दिमाग है कि सबकुछ नोट किये बिना मानता नहीं, बस जीवन की मुफ़लिस-सी आवाज़ में बयान किये तबील ब्यौरे ही दस्तक नहीं दे पाते।

'मैंने ग़लत क्या कहा था। वे लोग एक पैसा नहीं लेते; निस्वार्थ सेवा करते हैं, आध्यात्मिक हैं, यहाँ जन्मी तुम्हारी पीढ़ी को क्या मालूम। भूल चुकी सब कुछ। अरे मिलियन डॉलर खर्च करके भी हम उन लोगों जैसा सेवा भाव और परमात्मा पर आस्था नहीं ख़रीद सकते।' वे सपना को समझा रहे थे।

‘असल बात पैसा नहीं, यह है कि कुछ फ़ायदा है कि नहीं?’ मैंने कहा।

‘कैसी भारतीय हैं आप! आस्था पर विश्वास नहीं करेंगे तो फ़ायदा होगा कैसे? पॉज़िटिव वाइब्स भेजनी होती हैं रोगी के पास, एक-एक आदमी को, जिससे उसकी मानसिक और आत्मिक शक्ति सबल-प्रबल हो सके, शरीर को नीरोग कर सके।’

‘पर दर्द?’

‘हाँ डैडी, दर्द? हम जानते भी नहीं उन्हें कितना दर्द है।’

‘जान कर क्या होगा? उन्होंने कहा था न, एक समय आएगा जब उनका मन-मस्तिष्क ईश्वर में स्थित हो जाएगा और वे स्वयं पीड़ा से अनभिज्ञ हो जाएँगी।’

ज़ाहिर था वे शुद्ध हिन्दी में उनके कहे शब्द दुहरा रहे थे; पता नहीं वाकई उन पर आस्था थी या सपना को फुसला रहे थे। या अपने को?

सपना बेखयाली में बहुत जल्दी-जल्दी, बिना चखे, चिकन चिमीचुरी निगल रही थी।

जीवन अपनी करिश्माई डिश की बेनियाजी को घूर रहा था पर सपना उसकी नज़र से बेअसर, आँखों में आँसू संजोये, चम्मच भर-भर कर टूंस रही थी। तभी सुरुचि ने अपनी आधी भरी प्लेट आगे खिसका कर आहिस्ता से कहा, ‘मुझे नहीं खाना।’

उससे बल पाकर मैंने भी हौले से अपनी प्लेट इंच भर आगे की, कहा, ‘मुझे भी।’

‘दिमाग़ ख़राब हो गया है तुम लोगों का।’ जीवन ने चीखना चाहा पर तुनक कर रह गया। ‘प्लीज़ ख़त्म करो,’ उसने धिधिया कर जोड़ा, ‘पता है कितनी मेहनत की मैंने, कितनी कला लगी है इसे बनाने में?’ सुरुचि पिघली नहीं बल्कि उसके चेहरे पर वितृष्णा की परत पुत गई। उसे महसूस कर, जीवन हिंसक हो उठा।

बोला, ‘हिन्दुस्तान में इंसान की ज़िन्दगी की कीमत क्या है जो वे लोग एक आदमी की मौत को ले कर परेशान होंगे! उनके लिए जीवन-मृत्यु ईश्वर की इच्छा है, माया है, नियति है। संसार क्षण-भंगुर है, जो आता है, जाता भी है फ़लसफ़ा झाड़ कर अलग हो जाएँगे।’

‘अलग हम हो रहे हैं, वे नहीं। वे तो सेवा कर रहे हैं,’ सुरुचि तंज़ से आगे बढ़ गई।

‘हाँ-हाँ मालूम है। आंतिम समय जान कर सेवा

कर रहे है, अपना परलोक सुधारने को, उनकी ज़िन्दगी बचाने की खातिर नहीं।’

‘किसने कहा!’ अब बारूद-सा फटने की बारी सपना की थी। ‘हम उन्हें वहाँ मरने के लिए नहीं छोड़ कर आए, ठीक होने के लिए भेजा है।’

‘पिछड़े हिन्दुस्तान में! ज़िन्दगी की वहाँ क्या कीमत है, जानती नहीं? कम से कम तुम्हारे डैडी तो बख़ूबी जानते हैं। याद है इस चित्र को देख कर क्या कहा था तुमने?’

‘छोड़ो, उसकी क्या बात...’ आवाज़ का दम घोट कर मुरलीधर ने मिन्नत की।

‘भूल गए? कोई बात नहीं, याद दिला देता हूँ। तुमने कहा था, यह हिन्दुस्तान की बर्बरता की एकदम सही तस्वीर है। साले बड़े स्पिरिचुअल बने फिरते हैं, बकवास! अपने मतलब के लिए सैंकड़ों-हज़ारों की जान ले सकते हैं, यह फ़लसफ़ा झाड़ कर कि मरना तो उन्हें एक दिन था ही। प्रभु इच्छा! हम क्या कर सकते हैं! अवसरवादी बास्टर्ड! आयुर्वेदिक डिस्पैन्सरी खोल कर, उन्हीं के मुफ़्त इलाज करने का दिखावा करते हैं, जिन्हें बेघर करके करोड़ों कमाये थे। कोई पूछे, अगर आयुर्वेद में इतनी ताक़त है तो ख़ुद एलोपैथिक इलाज क्यों करवाते हैं, तमाम सत्तासीन अमीर जन!’

‘डैडी!’ सपना ने कातर स्वर में गुहार लगाई।

‘बोलो, कहा था कि नहीं?’

‘कह दिया होगा। बहस में आदमी बहुत कुछ कह जाता है...पर मेरा विश्वास...’

‘कचरा विश्वास! हर हिन्दुस्तानी की तरह तुम भी हिपोक्रिट हो!’

‘पर यह चित्र आपने खाने की मेज़ के सामने क्यों लगा रखा है?’ अब जाकर मेरे मुँह से फूटा।

‘क्यों उबकाई आती है? सच देखने की कूवत नहीं है! नज़रें फेर कर भकोसना चाहते हो? जैसे चौराहे पर भीख माँगते बच्चों और विकलांगों से नज़रें फेर कर मोबाइल पर केक आर्डर करते हो!’

मेरे कण्ठ से आवाज़ नहीं निकली। हतप्रभ सपना भी चुप रही। सुरुचि ने हिम्मत करके मीठे स्वर में कहा, ‘छोड़ो भी। अब कोई खुशनुमा बात करते हैं। पता है जीवन ने लेमन सूफ़ले बनाया है। देर हुई तो बैठ जाएगा। बड़ी नाज़ुक डिश है।’

‘सोनिया!’ जीवन ने सीधा मुझे धर पकड़ा, ‘जानना नहीं चाहती चित्र है कहाँ का? बूझो कहाँ का है?’

‘मुझे नहीं पता,’ मैं मिमियाई।

‘सूरत का है, 2012 की बाढ़ का। बहुत लोग डूब गये थे,’ सुरुचि बीच में कूद गई। ‘मैं सूफ़ले ले कर आती हूँ।’

‘नहीं, मैं ख़ुद लाऊँगा। अभी समय है। बाढ़ आई क्यों वह भी तो बतलाओ। डैम को बचाने की खातिर पानी, शहर की निचली ग़रीब बस्तियों और गाँवों की तरफ़ छोड़ दिया गया था। दो हज़ार, एक सौ पिचासी लोग डूब कर मर गए थे। उसीकी फ़ोटो है यह। देखो, कितने लोग मरते दिख रहे हैं। गिनो। एक-दो-तीन... गिनती जाओ...देखो वे बच्चे हैं, वे बूढ़े मर्द-औरत, वे गर्भवती औरतें, देखो वह वाली पूरे नौ महीने की लगती है। देखा।’

जिसे नहीं देखने का नाटक करती रही थी, उसे अब रेशा-रेशा साफ़ देख रही थी। 40 बाय 30 इंच के चित्र का हर मिलिमीटर लश बनते इंसान की शकल ले चुका था। चित्र बेआवाज़ था पर मुझे बेपनाह चीखोपुकार सुनाई दे रही थी। बेहरकत था पर उसमें बसी छटपटाहट साफ़ दिख रही थी, इतनी कि हर मौत को मैं अलग महसूस कर रही थी। सामूहिक नरसंहार, रेशा-रेशा मेरे सामने घटित हो रहा था। चुम्बकीय आकर्षण से बँधी, चित्र पर आँखें गड़ाये मैं, निस्तब्ध उसे देखे जा रही थी।

‘इसके फ़ोटोग्राफ़र, केरल के मशहूर चित्रकार श्रीनिवासन हैं। बढिया कलाकृति है न? जैसे फ़ोटो न हो कर पेन्टिंग हो। एक बात है, केरल में और जो हो-न-हो, कला ज़बरदस्त है, क्यों सोनिया?’ मैंने कुछ नहीं कहा पर सपना कुर्सी पीछे धकेल, खड़ी हो गई। ‘चलूँगी,’ उसने सपाट लहजे में कहा, ‘दफ़्तर में काम है।’

‘बैठो,’ जीवन ने हुकम दिया। उसकी आवाज़ में ग़ज़ब का रौब था, ‘मैं सूफ़ले ला रहा हूँ, बहुत नायाब रेसिपी है, उसे बनाना जीनियस कारीगिरी की माँग करता है, इस चित्र की तरह। नियंत्रण ज़रा बिगड़ा नहीं, सामग्री का बेलेन्स गड़बड़ाया नहीं, पानी की मिकदार बढ़ी नहीं कि सूफ़ले कोलाप्स हुआ। खाये बग़ैर नहीं जा सकतीं तुम!’ वह रसोई में चला गया।

सपना बैठी नहीं पर जाने के लिए क्रदम आगे नहीं बढ़ाये; मूर्तिवत् खड़ी रही। हम सब भी क्रहर के अहसास से थराए, चित्र की तरह विचल-अविचल बैठे रहे।





यूके की कथाकार, ग़ज़लकार, उपन्यासकार नीना पॉल के तीन उपन्यास-रिहाई, तलाश, कुछ गाँव-गाँव कुछ शहर-शहर और तीन कहानी संग्रह-अठखेलियाँ, फ़ासला एक हाथ का, शराफ़त विरासत में नहीं मिलती तथा पाँच ग़ज़ल संग्रह-कसक, नयामत, अंजुमन, चश्म-ए-ख़्वादीदा, मुलाकातों का सफ़र हैं। हिंदी की वैश्विक कहानियाँ का संपादन किया है।

उपन्यास तलाश के लिए कथा यू.के. द्वारा पद्मानंद साहित्य सम्मान से ब्रिटेन के हाऊस ऑफ़ कॉमन्स में सम्मानित। हिंदी सम्मेलन दिल्ली-उपन्यास रिहाई के लिए सम्मानित, लखनऊ से सुमित्रा कुमारी सिन्हा सम्मान से सम्मानित हैं।

ईमेल: nenapaul@live.co.uk,

फ़ोन: ००-४४-७४०५१६४८२०

संपर्क: 19 Rosedene Avenue,

Thurmaston, Leicester LE4 8HR,
(U.K.)

सिगरेट बुझ गई

नीना पॉल

घर के चारों ओर पुलिस ने पीले रंग की टेप का घेरा डाल दिया। सामने से निकलने वाला प्रत्येक राहगीर कुछ पल के लिए खड़ा हो कर सोचने लगता कि इस घर में क्या हुआ है? इस घर में किसी की मृत्यु हुई है, जिसकी सूचना डाकिये से मिली है। जब डाकिया लैटर बॉक्स से चिट्ठी डाल रहा था, तो उसे अंदर से एक अजीब प्रकार की महक आई। उसने दरवाज़े पर दस्तक दी। अंदर कोई हलचल न हुई। डाकिये को किसी अनहोनी की शंका होने लगी। उसने जेब से मोबाइल निकाल कर ९९९ पुलिस का नम्बर घुमा दिया।

पुलिस का नम्बर क्या घुमाया कि शोर मचाती हुई दो पुलिस की गाड़ियाँ व एक एंबुलेंस कुछ ही पलों में वहाँ पहुँच गईं अपने चेहरे पर मास्क पहन कर पुलिस ऑफ़िसर ने दरवाज़े को ज़ोर से धकेला परंतु वह अंदर से बंद था। पहले पुलिस ने मास्टर की सहायता से ताला खोलना चाहा। कई डबल गलेज़ ताले मास्टर की से भी नहीं खुलते। अंत में हार कर वे दरवाज़े का ताला तोड़ कर अंदर घुसे।

अंदर घुसते ही उन्हें बहुत ज़ोर की महक आई। लिविंग रूम में बहुत गर्मी थी। गैस फ़ायर पूरे जोश से जल रही थी। गैस फ़ायर के सामने ही रॉकिंग चेयर पर एक पुरुष बैठा था। यह महक उसी से आ रही थी। इतनी गर्मी के कारण उस के शरीर की त्वचा भी पिघल कर ढुलकने लगी थी। यहीं से सड़े माँस की गंध आ रही थी। कुर्सी से नीचे लटकते उसके हाथ की उँगलियों में एक सिगरेट दबी हुई थी। जो न जाने कब की एक लम्बी राख की लकीर छोड़ कर बुझ चुकी थी।

उस मृत पुरुष की टाँगों पर एक लिफ़ाफ़ा पड़ा मिला। यह सोच कर कि शायद कोई सुराग मिल जाये पुलिस ऑफ़िसर ने वह लिफ़ाफ़ा खोला जिसमें लिखा था.....

हम सब की ओर से आपको अपनी ६५वीं वर्षगाँठ की बहुत बधाई

पुनीत

लिफ़ाफ़े को पलट कर देखा तो ३० दिसंबर की लॉफ़बरो की मोहर लगी हुई थी। ऑफ़िसर ने वो कार्ड फिर से लिफ़ाफ़े में डाल दिया। हो सकता है यह कार्ड छुट्टियों के कारण २ जनवरी को मिला हो। उन दिनों ठंड भी तो ग़ज़ब की थी।

पुलिस ने पूरे घर का निरीक्षण किया। उनके साथ आये हुए फ़ोटोग्राफ़र ने हर कोने से कमरे के चित्र उतारे। कुर्सी पर बैठे उस पुरुष की प्रत्येक एंगल से कई फ़ोटो ली गईं। कुर्सी के चारों ओर चॉक से एक लकीर खींच कर पुलिस का काम यहाँ पर समाप्त हुआ।

उनका काम समाप्त होते ही एंबुलेंस से पैरामेडिक्स को बुलाया गया। पैरामेडिक्स ने मास्क ही नहीं हाथों में सफ़ेद रंग के लम्बे दस्ताने भी पहने हुए थे। पहले लाश की जाँच की गई। पैरामेडिक्स ले पुलिस

की आज्ञा से गैस फ़ायर बंद किया गया। बिना पोस्टमॉर्म के यह बताना कठिन था कि मौत कितने दिन पहले हुई थी।

लाश की जाँच हो जाने के पश्चात् उस लाश को एक कम्बल में लपेट दिया गया। एंबुलेंस से स्ट्रेचर ला कर लाश को आराम से उस पर लिटा दिया। फिर वह पूरा स्ट्रेचर एंबुलेंस के अंदर ले गये।

एंबुलेंस जिस तेज़ी से शोर मचाती हुई आई थी अब उतनी ही उदासी से धीरे से सरकती हुई वहाँ से खाना हो गई।

दरवाज़े पर नया ताला लगवा कर पुलिस ने उस पर भी पीले रंग का टेप लगा दिया।

जिस घर से लाश मिली है यह सारा काउंसिल का एरिया है। यहाँ अधिकतर बुजुर्ग या ६० वर्ष से ऊपर सिंगल लोग ही रहते हैं। जिलियन जो इस घर से तीन-चार घरों की दूरी पर ही रहती है, पुलिस और एंबुलेंस की आवाज़ें सुन कर उत्सुकता वश देखने चली आई।

‘रोज़ी..... यह तुम्हारे पड़ोसी घर में क्या हुआ है?’

‘यहाँ मेरे पड़ोस में जो व्यक्ति रहता था, उसकी मृत्यु हो गई है। अभी पुलिस पूछ-ताछ करने आई थी उन्हीं से पता चला है।’

‘जीसस क्राइस्ट....’ जिलियन अपने सीने पर क्रास बनाते हुए बोली.. ‘कुछ पता चला उसकी मृत्यु कब हुई, और कैसे हुई?’

‘नहीं जिलियन पुलिस घर-घर जाकर यही पता लगाने का प्रयत्न कर रही है कि वह कौन था। पड़ोसी होने के नाते मैं तो बस इतना ही जानती हूँ कि उसका नाम घनश्याम गुप्ता था। वह बहुत ही भला इंसान था। जो न किसी के लेने में न देने में था। एक बहुत ही अकेला इंसान; जिसे कभी उसके बच्चे या रिश्तेदार मिलने नहीं आए।’

‘अकेले तो हम सब हैं रोजी। न जाने हमारा अंत कैसा होगा’ जिलियन उदास होते हुए बोली

‘ऐसा मत सोचो जिलियन। हम सब हैं न यहाँ एक दूसरे के लिए।’

कब तक..... जब समय आयेगा तो क्या मालूम कौन कहाँ होगा उसने चलते हुए कहा।

पुलिस भी बस इतना ही पता कर पाई कि इस मृतक का नाम घनश्याम गुप्ता था। पोस्टमार्टम के अनुसार इस की मृत्यु ३१ दिसंबर और २ जनवरी के बीच में हुई है। आज २७ जनवरी है। इसका



मतलब २५ दिन से ऊपर हो गये इसकी मृत्यु को। हमें शीघ्र ही पता लगाना चाहिए कि यह कार्ड भेजने वाला कौन है। पुलिस उसके परिवार के विषय में जानने के लिए अपने काम में जुट गई।

काम तो किसी का नहीं रुकता चाहे कैसा भी मौसम क्यों न हो। गर्मी हो या सर्दी। लगता है इस वर्ष कुछ ज़्यादा ही ठंड पड़ रही है। दस्तानों के अंदर भी उँगलियाँ सर्दी के मारे जैसे सिकुड़ रही हैं।

उस दिन भी ऐसे ही कड़केदार ठंड थी। ब्रिटेन के लोग वाइट क्रिसमस माँगते हैं, परंतु मौसम को देख कर तो यूँ लगता है कि क्रिसमस के स्थान पर इस वर्ष वाइट नव वर्ष ज़रूर होगा।

कल रात से ही बर्फ़बारी हो रही है।

नव वर्ष का आगमन कितनी गर्मजोशी से ठंडे बर्फ़ के फ़ाहे उड़ाते हुए हुआ। पतझड़ के पश्चात् नग्न पेड़ों की डालियाँ।.... शर्म से झुकी हुई.... आज श्वेत वर्ण के वस्त्रों से ढकी कैसे गर्व से सिर उठाये झूम-झूम कर धरती पर सफ़ेद मोतियों की चादर बिछा रही हैं।

प्रकृति का एक इतना सुंदर दृश्य जिसने रातों रात श्वेत रंग बिखरा कर पूरे वातावरण को पवित्र कर दिया; जिसे देख कर मनुष्य तो क्या पशु पक्षी भी अपनी सुध-बुध खो दें। सुध-बुध तो घनश्याम की खो चुकी है। उँगलियों में सिगरेट दबाये रॉकिंग चेयर को खींच कर वह लम्बे शीशे के दरवाज़े के सामने आकर बैठ गया। इस दरवाज़े के बाहर एक छोटा सा बरामदा और उसके आगे गार्डन है। घर

को दूसरे घरों से अलग करने के लिये गार्डन के चारों ओर लकड़ी की फ़ेंस लगी हुई है, जो भूरे रंग की है। सर्द ऋतु होने के कारण बगीचे में कोई फूल-पत्ती दिखाई नहीं दे रही। धीरे-धीरे सब कुछ बर्फ़ से ढकता जा रहा है।

बर्फ़ को देख कर घनश्याम को अपनी छोटी बेटी रिचा की याद आ गई।....‘पापा देखिए न कितनी ज़ोरों से बर्फ़ गिर रही है चलिए स्नोमैन बनाएँ’।

‘बेटा इतनी ठंड में बीमार हो गई, तो मम्मी हम दोनों को डॉटिंगी,’ घनश्याम रिचा को कोट पहनाते हुए बोले।

‘पापा चलिए न बस छोटा सा बनाएँगे,’ उसने दोनों हाथ आगे करते हुए कहा-जिनमें गाजर, टमाटर और खीरा थे। घनश्याम बेटी की बात न टाल सके और चल पड़े दोनों बाप बेटी गिरती बर्फ़ में स्नोमैन बनाने। एक बड़ा सा बर्फ़ का पुतला बनाया गया। गाजर से उस की नाक, टमाटर की फ़ाँक से होंठ व खीरे के दो गोल टुकड़े काट कर उस स्नोमैन की आँखें बनाई गई, बर्फ़ से काम करते हुए दोनों बाप बेटी के हाथ ठंडे पड़ गए थे। पुरानी यादों में खोए घनश्याम अन्जाने ही अपने हाथों को मलकर गर्म करने लगा।

बाहर की ठंडी बर्फ़ भी उस के भीतर उठते सोचों के उबाल को न रोक सकी। कहाँ गया वह सब कुछ। एक छोटी सी भूल से जैसे ज़िंदगी ही रुक गई हो। आखिर कब तक वह अपनी गलतियों की सलीब को ढोता रहेगा। कहने को वह चार बच्चों का बाप है। एक भरा पूरा परिवार है उसका। कहाँ है वो परिवार, जिसको उसके बेबुनियाद शक और झूठे घमंड ने ठोकर मार दी। बच्चे उसके हो कर भी उसके नहीं। नहीं..... यह झूठ है।..... वो सब तो आज भी उसी के हैं, किंतु वह ही उनका न हो सका।

दरवाज़े पर एक आवाज़ सुन कर उसकी सोच को झटका लगा। अनमने मन से बड़बड़ाते हुए वह उठा। लोगों के पास पता नहीं कितना व्यर्थ का समय और पैसा है, जो यूँही कागज़ों के पुलिंदे दूसरों के घरों में फेंकते रहते हैं।

अरे...यह तो कोई चिट्ठी लगती है।... उस पर लॉफ़बरो की मोहर देख कर चिट्ठी उसके हाथ से गिर गई। वर्षों पहले ऐसे ही एक चिट्ठी आई थी। कितना गर्व महसूस किया था उसने, उसे अपनी

जीत समझ कर कि।.....चलो... सीमा ने अपनी गलती मान ही ली। अवश्य ही माफ़ी माँगकर मुझे वापिस बुलाया होगा। आखिर पति हूँ उसका।... मगर....लिफ़ाफ़ा खोलते ही उसका सिर घूम गया कि यह अनहोनी कैसे हो गई। एक भारतीय पत्नी ऐसा कभी सोच भी नहीं सकती। मारवाड़ी परिवार में यह पहली ऐसी स्त्री होगी जिसने इतना बड़ा कदम उठाया हो। ज़रूर किसी ने इसे सिखाया होगा।

हाँ.... हैं न इसे सिखाने वाले एक अतुल और दूसरी अलका।

वो सीमा जिसको वह कितना कुछ कह देता था। जवाब देने के स्थान पर वह ख़ामोशी से आँसू बहाती हुई कमरे से बाहर चली जाती थी। आज उसमें इतनी हिम्मत कहाँ से आ गई। वह नारी की हिम्मत और ताकत को शायद भूल गया था। आज सीमा ने वो कर दिखा दिया; जिसकी वह उसे सदैव धमकी देता आया है। पत्नी की ओर से आया तलाक़नामा उसके हाथ में काँप रहा था। उसे इस तलाक़नामे पर हस्ताक्षर करके वापिस भेजना है।

सुनार आभूषण तराशने के लिये छोटी सी हथौड़ी बड़े प्यार से आभूषण पर चलाता है, वहीं लोहार को लोहे का सामान बनाने के लिए हथौड़ा ज़ोर से मारना पड़ता है। आज सीमा ने भी एक ही वार में बरसों के दबे हुए अपमान के गुबार को निकाल दिया। यह सब करना उसके लिए भी आसान नहीं था। शादी के सोलह वर्षों में उसने सैंकड़ों बार सुना होगा 'मैं तुम्हें छोड़ दूँगा।' सहनशक्ति की भी एक सीमा होती है। अभी तक वह चार बच्चों के कारण ख़ामोश थी। ख़ामोशी भी कभी ज्वार-भाटे के समान फूट कर सारा लावा उगल शांत हो जाती है।

शांति तो अब घनश्याम की भंग हो चुकी थी। उसे अभी तक महिला शक्ति का आभास नहीं था। आभास होता भी तो कैसे। भारत से कैमिस्ट्री में पीएच.डी करने के पश्चात् भी ब्रिटेन में उसकी अंग्रेज़ी ज़ुबान कोई समझ नहीं पाता था। जब उसका कानपुरिया एक्सेंट कभी बच्चे भी न समझ पाते तो वह उन पर झल्ला उठता। उधर सीमा भी भारत से ही पढ़ कर आई है। उस की पढ़ाई मिशनरी स्कूल में होने के कारण उसे ब्रिटेन में आ कर अंग्रेज़ी बोलने या समझने में कोई कठिनाई नहीं हुई। एक पुरुष और भारतीय पति होने के नाते घनश्याम कैसे

सहन कर सकता था कि उसकी पत्नी उससे आगे निकल जाए।

सहन तो सीमा करती आ रही थी; जिसे घनश्याम उसकी दुर्बलता समझ कर उसे मानसिक ताड़ना देने से न चूकता। एक पतिव्रता महिला सब कुछ सहन कर सकती है; किंतु अपने चरित्र पर लाँछन कभी बरदाश्त नहीं कर सकती। एक तो वह काम से थकी हारी आती और आते ही पति की जुबान से फूल बरसने लगते। अंत में बात सदैव सीमा को छोड़ देने पर ही समाप्त होती। घनश्याम ने तो सोचा भी नहीं था कि उसकी बंदर भभकियों का जवाब कभी ऐसा भी मिल सकता है।

सिगरेट के कश खींचते हुए हाथ में चिट्ठी लेकर घनश्याम रॉकिंग चैयर पर बैठ गया। अब यह कुर्सी ही तो उसकी एक मात्र साथी है; जो उसे आराम के साथ पुरानी यादों में ले जाकर उसकी गलतियों का एहसास भी दिलाती रहती है। उन गलतियों का एहसास जिन्हें सीमा हमेशा नज़रअंदाज़ करती रही। घनश्याम यह स्त्री की दुर्बलता समझता रहा। किसी पर हाथ उठाने से केवल शरीर पर चोट लगती है किंतु यह रोज़-रोज़ के ताने दिल पर गहरा घाव छोड़ छेद कर निकल जाते हैं।

छेद कर तो आज ये टंड जा रही है सारे शरीर को। बर्फ़ की गति और बढ़ गई थी। अब तो साथ में तेज हवा भी चलने लगी थी, जिसे देख कर यूँ प्रतीत होता था मानों बर्फ़ में एक तूफ़ान उठा हो। बाहर का ऐसा माहौल देख कर घनश्याम को और टंड लगने लगी। उसने कंधे पे पड़ी शॉल को अपने चोरों ओर लपेट लिया और उठ कर जलती हुई गैस फ़ायर को थोड़ा और ऊँचा कर दिया। घनश्याम ने उस बड़े दरवाज़े के पास से कुर्सी को खींचकर गैसफ़ायर के सामने रख दिया।

यह गिरती बर्फ़ सदा उसके मन में गर्मागर्म चाय पीने की इच्छा जगा देती है। किचन में जाकर उसने एक पतीले में पानी डाला और चाय के लिए गैस पर चढ़ाते हुए फिर ख़यालों में खो गया।

'सीमा.....जरा अच्छी सी कड़क चाय तो पिलाओ। और हाँ देखो आज दो चम्मच चीनी भी डाल देना। फीकी चाय पी-पी कर मुँह का स्वाद भी ख़राब हो गया है।'

'आप जानते हैं कि आपके लिए चीनी ठीक नहीं है। मुश्किल से आपकी इन्सुलीन कम हुई है।' सीमा चाय बनाते हुए बोली

'चाहे तुम कुछ भी कर लो ये मुई शुगर की बीमारी तो पीछा छोड़ने वाली है नहीं। कम से कम चाय तो मतलब की पी लेने दिया करो।'

हाथ में जलती सिगरेट से जब उँगलियाँ जलीं तो उसकी सोच का ताँता टूटा। गैस पे रखा चाय का पानी भी उबल कर आधा रह चुका था। घनश्याम ने उसमें भर के दो चम्मच चाय की पत्ती के डाले। आधा प्याला दूध का। तीन चम्मच चीनी के डाल कर उसे यूँ महसूस हो रहा था जैसे कि वह सीमा को चिढ़ा रहा हो। उसने चाय को ख़ूब उबाला। आज वह ऐसी चाय पीना चाहता था, जो उसके कलेजे के साथ उसकी सारी पुरानी यादों को भी जला कर राख करदे बिलकुल इस जलती हुई सिगरेट के समान।

ऐसा ही एक उबाल उस दिन सीमा के सीने में भी उठा था। उसके सामने कुछ कागज़ बिखरे पड़े थे, वह जिन्हें पढ़ने का प्रयत्न कर रही थी। आज घनश्याम ने मर्यादा की हर सीमा को तोड़ दिया था। तलाक़ नामे पर तो हस्ताक्षर किये ही साथ में एक पर्चा भी था....लो... आज मैं तुम्हें ही नहीं तुम्हारे बच्चों को भी तलाक़ देता हूँ।

सीमा कभी एक कागज़ उठाती और कभी दूसरा। पूरा चेहरा आँसुओं से भीगा हुआ है। घबराहट के कारण साड़ी का पल्ला दाँतों में दबा कर ज़ोर से खींच देती। एक हस्ताक्षर और १६वर्ष का रिश्ता समाप्त। ये सात फ़ेरों, सात वचनों से बँधे रिश्ते क्या इतने दुर्बल होते हैं; जिसका निर्णय एक कागज़ का टुकड़ा लेता है।

क्या यह वही सीमा है, जो दफ़्तर में रोज़ाना न जाने कितने बड़े निर्णय लेती है। सारा दिन कितनी ही चिट्ठियों पर हस्ताक्षर लेती और करती है। आज इस कागज़ पर हस्ताक्षर देखते हुए उसका सम्पूर्ण वजूद क्यों काँपने लगा? वह बच्चों के प्रश्नों का कैसे उतर देगी? वह समाज की नज़रों का सामना अकेली कैसे करेगी? दोष तो सब उसी को देंगे।

एक स्त्री पति के ज़ुल्म सहती हुई ख़ामोशी से जीती रहे तो समाज खुश है; परंतु जहाँ उसने सर उठाया कितने ही जूते उसे कुचलने के लिये तैयार हो जाते हैं। वह जानती है, उसके इस निर्णय को माँ और भैया कभी सहमत नहीं देंगे। इस पुरुष प्रधान समाज में पैदा होते ही लड़की की ज़ुबान को सिल दिया जाता है। पति का हर ज़ुल्म सहना अच्छी गृहिणी का गुण माना जाता है। कुर्बानी ही

स्त्री का दूसरा नाम है।

दरवाजे पर दस्तक सुन कर सीमा के काँपते हाथों से कागज़ छूट कर मेज़ पर यूँ बिखर गए मानों वह कोई चोरी करती हुई पकड़ी गई हो। देखा तो सामने उसकी सहेली अलका खड़ी थी। सीमा के धैर्य का बाँध सारे बंधन तोड़ कर वेग गति से बह निकला।

‘सब कुछ खत्म हो गया अलका।’ वह उसके सामने कागज़ बढ़ाते हुए हिचकियों में बोली।

‘कुछ खत्म नहीं हुआ सीमा,’ कागज़ पढ़ते हुए अलका ने सीमा को गले लगा लिया। ‘यह तो तुम्हारे नए जीवन की शुरुआत है। सम्भालो अपने आप को। क्या यह मेरी वही बहादुर सहेली सीमा है।....’

‘मैं टूट चुकी हूँ अलका।’

‘अजी जिसके चार-चार सहारे खम्भे के समान साथ खड़े हों, वह कैसे टूट सकती है। ऑफ़िस की शेरनी को यह सब शोभा नहीं देता सीमा। हमें अपनी सखी की एक ही अदा तो पसंद है, जिसके प्यार में कोई आवाज़ नहीं और टूटे तो झंकार नहीं।’

‘झंकार तो उस दिन हुई थी; जब वह थकी टूटी रात को आठ बजे घर आई थी। दरवाजा खोलते ही घनश्याम उस पर बिफर पड़े-‘कभी घड़ी भी देख लिया करो महारानी।’

‘माफ़ करना श्याम मीटिंग ज़रा ज़्यादा ही लम्बी खिंच गई।’

‘यह तुम्हारा कौन सा ऑफ़िस है, जो आधी रात तक खुला रहता है। तुम्हें यह भी भुला देता है कि घर में तुम्हारे पति और बच्चे हैं। वो भी तुम्हारी प्रतीक्षा करते हैं।’

सीमा का दिन ऑफ़िस में आज वैसे ही बुरा बीता था। यह नया बॉस प्रमोद नागर जब से आया है, कोई न कोई मुसीबत खड़ी करता रहता है। सीमा का सिर दर्द से फ़टा जा रहा था। सारा दिन कुछ खाने की भी फ़ुरसत नहीं मिली थी। ऊपर से घर आते ही सदा की तरह घनश्याम का क्रॉस एग्जामिनेशन। वह बड़े शांत स्वर में बोली....

‘बच्चों के पास आप जो हैं श्याम। मैं जानती हूँ आप उनको कभी मेरी कमी महसूस नहीं होने देते।’

‘हाँ... मैं घर में बच्चों की आया बना रहूँ, तुम्हारी नौकरी करता रहूँ, यही तो चाहती हो न तुम।’

‘किसी को तो काम करना है न श्याम.....’

अभी सीमा की बात पूरी भी नहीं हुई थी कि



घनश्याम तड़प कर बोले.....’ तुम्हारे कहने का मतलब क्या है। मैं निठल्ला हूँ। तुम्हारी कमाई पर जी रहा हूँ। जानती हो कि तुमसे ज़्यादा कमाता हूँ मैं। चार दिन मुझे नौकरी से घर क्या भेज दिया कि तुम दिखाने लगी अपने रंग। एक दिन छोड़ दूँगा तो निकल जाएगी सारी हेकड़ी। देखता हूँ, कैसे पालती हो नौकरी के साथ बच्चों को।’

‘श्याम प्लीज़ धीरे बोलिए बच्चे कहीं सुन न रहे हों।’

‘अच्छा है, जो वो भी सुनें अपनी माँ की करतूतों को। यह आज फिर अतुल आया था न तुम्हें छोड़ने।’

‘आप ही तो सुबह मुझे काम पर छोड़ कर आए थे। आप की कार सर्विस के लिए जाने वाली थी। फिर यदि अतुल मुझे छोड़ कर गया है, तो उसमें हर्ज़ ही क्या है। हमारा घर उसके रास्ते में ही तो पड़ता है।’

‘साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहती कि तुम दोनों के बीच कुछ चल रहा है....’

‘श्याम..... इतना घिनौना इल्जाम लगाने से पहले यह तो सोच लिया होता कि मैं आपकी ब्याहता और चार बच्चों की माँ हूँ।’ सीमा हमेशा की तरह रोती हुई बिना कुछ खाए वहाँ से जाने लगी तो घनश्याम पीछे से बोले-‘मैं कल सुबह लीड जा रहा हूँ। कल सुबह तक भी क्यों रुकूँ। अभी जा रहा हूँ। मुझे जॉब पर वापिस बुला लिया गया है।’

‘श्याम कुछ दिन और अभी बच्चों के पास रुक जाते। मेरे ऑफ़िस में काफ़ी गड़बड़ चल रही है।’

सीमा जाते हुए रुक गई।

‘क्यों,... मैं तुम्हारे बच्चों की आया हूँ।’ श्याम चिल्लाकर बोले

‘ये बच्चे आपके भी तो हैं।’

‘नहीं ये मेरे नहीं आपके बच्चे हैं। सँभालिए आप अपनी गृहस्थी को अकेले। मैं भी देखता हूँ तुम कब तक..... मेरा तुमसे और तुम्हारे बच्चों से कोई मतलब नहीं।’ ऊपर बैडरूम का दरवाजा जोर से बंद हुआ। जिसका सीमा को डर था वही हुआ। बच्चों ने सब कुछ सुन लिया था। सुनाया और सिखाया तो घनश्याम ने था जाने से पहले, अपनी मज़ली बेटी रेनु को।.....

‘रेनु बेटा पापा का एक काम करोगी।’

‘जी पापा।’

‘ये हम दोनों के बीच की बात होगी। मम्मा को इस विषय में कुछ नहीं बताना। तुम तो जानती ही हो कि मम्मा तुम्हें कितना डाँटती हैं। तुम मेरी लाड़ली बेटी हो इसलिए तुमको यह काम सौंप कर जा रहा हूँ।’

‘बोलिए पापा मुझे क्या करना होगा।’

‘मैं कल सुबह लीड वापिस जा रहा हूँ। तुम बस अपनी मम्मा पर नज़र रखना कि वह कितने बजे काम से घर आती हैं और अतुल अंकल साथ में आते हैं कि नहीं।’

‘अतुल अंकल मुझे बिल्कुल अच्छे नहीं लगते पापा।’

‘मैं जानता हूँ बेटा, इसीलिए तो यह काम तुम्हारी बड़ी बहन को न देकर तुम्हें सौंप रहा हूँ।’

‘आई लव यू पापा।’ रेनु पापा से लिपटते हुए बोली।

‘ठीक है बेटा मैं तुम्हें फ़ोन करता रहूँगा।’

आज घनश्याम ने छोटी सी बच्ची के दिमाग में भी शक का बीज डाल दिया था। यह फ़ालतू का शक श्याम को न जाने कहाँ ले जाएगा। वह तो सीमा का कोई तर्क सुनने को तैयार नहीं हैं। सीमा का स्त्रीत्व घायल हो कर रह गया। आदमी को अपने पुरुषत्व का इतना घमंड। अब मैं इनको दिखाऊँगी कि पुरुष के बिना भी स्त्री सम्पूर्ण है। सीमा की आँखों के आँसू सूख गए। नहीं..... वह अबला नारी बन कर नहीं जियेगी।

सीमा ऑफ़िस में बैठी कुछ चिट्ठियाँ पढ़ रही थी कि प्रमोद उसके कमरे में आया..‘सीमा जी, आज शाम को काम के पश्चात् कुछ दूसरे कम्युनिटी

सैण्टर्ज के साथ मैंने मीटिंग रखी है; जिसमें आपका होना भी आवश्यक है।’

‘सॉरी मिस्टर नागर..... मेरे जॉब एग्रीमेंट में महीने में केवल एक देर शाम तक मीटिंग के बारे में लिखा है। और वो मीटिंग कल हो चुकी है। मैं ५.३० के बाद नहीं रुक सकती। आप मेरे बिना चाहें तो यह मीटिंग कर सकते हैं।’ सीमा ने ऐसी गम्भीर आवाज़ में कहा कि प्रमोद आगे कुछ कह न सका।

यह आज इतनी गम्भीर क्यों है प्रमोद सोचने लगा। ज़रूर कल रात पति के साथ तू-तू-मैं-मैं हुई होगी। यही तो मैं चाहता हूँ। काम में तो इसे कोई हरा नहीं सकता। ऐसे ही सही। ऐसे ही सोचते हुए प्रमोद आगे कुछ और योजनाएँ बनाने लगा सीमा को तंग करने के लिए। यही सीमा के स्थान पर कोई अंग्रेज़ महिला होती तो प्रमोद उसके तलुए चाटता दिखाई देता; किंतु एक भारतीय पुरुष कभी सहन नहीं कर सकता कि ऑफिस में कोई भारतीय नारी की जानकारी उससे अधिक हो। जानकारी लेने हेतु ही तो घनश्याम ने रेनु को फ़ोन कर डाला यह जाने बिना कि आज सीमा घर पर है। फ़ोन उसकी बड़ी बहन रंभा ने उठाया।

‘हैलो रंभा बेटे फ़ोन ज़रा रेनु को देना।’

‘जी पापा’

‘किसका फ़ोन है रंभा?’ सीमा ने जानना चाहा।

‘पापा का है माँम वह रेनु से बात करना चाहते हैं। वैसे वह अक्सर रेनु से बात करते हैं।’

उधर रेनु बोल रही थी.. ‘जी पापा..... नहीं मम्मी आजकल बहुत जल्दी घर आती हैं। मैं हमेशा उन पर नज़र रखती हूँ।..... कौन अतुल अंकल, वो तो जब से आप गए हैं कभी भी घर नहीं आए।’

सुनते ही सीमा का सिर झन्ना उठा। श्याम छोटी सी बच्ची से जासूसी करवा रहे हैं। वो भी अपनी माँ की। सीमा ने फ़ोन रेनु के हाथ से ले लिया....

‘आप जानते हैं कि आप यह क्या कर रहे हैं श्याम। अपना काम निकलवाने के लिये एक छोटी सी बच्ची के दिमाग में अपनी माँ के प्रति ज़हर भर रहे हैं। कितने अच्छे संस्कार दे रहे हैं न अपने बच्चों को।’

‘जब घी सीधी उँगली से नहीं निकलता तो उसे टेढ़ा करना पड़ता है।’ घनश्याम गुस्से से बोले।

‘‘बुजदिलों के समान बच्चों को प्रयोग करना छोड़िये और मुझसे बात कीजिए, कि आप क्या

जानना चाहते हैं। अभी तक मैं एक पत्नी का धर्म निभा कर खामोश थी; लेकिन आज आपने एक माँ की ममता को ललकारा है, जो मैं हरगिज़ बरदाश्त नहीं कर सकती।’

‘आज तुम्हारी हिम्मत इतनी बढ़ गई है, जो मुझसे ऐसे बात कर रही हो। हाँ ... अतुल जो आ गया है तुम्हारी ज़िंदगी में.....।’

‘बस..... अब आगे एक और शब्द नहीं। आप मेरी हिम्मत देखना चाहते हैं न तो देखिए।’... सीमा ने फ़ोन पटक दिया। उसका सारा शरीर पत्ते के समान काँप रहा था। क्या यह वही इंसान है, जिसके साथ मैंने शादी के १६ वर्ष बिताये हैं। इतनी कड़वाहट। सीमा ने गुस्से से फ़ोन उठा कर एक नम्बर घुमाया.....‘हैलो बी.टी.एक्सचेंज। मैं सीमा गुप्ता २३१०९७ से बोल रही हूँ। मैं अपना फ़ोन नम्बर बदलना चाहती हूँ।’

‘कोई विशेष कारण। आप कब से बदलना चाहती हैं मैडम।’ उधर से आवाज़ आई।

‘जी निजी कारण है। आज से ही बदल दीजिए तो अच्छा है।’ सीमा ने फ़ोन ही नहीं बदला बल्कि अपने जीवन का पन्ना ही बदल दिया। घनश्याम ने तो कभी सपने में भी नहीं सोचा था, कि उसकी धमकियों का इतना कड़ा जवाब आएगा।

घनश्याम चाह कर भी फिर कभी लॉफ़बरो न आ पाए। क्या मुँह लेकर आते? स्वयं ही तो सीमा से कह दिया था कि बच्चों से उनका कोई सम्बंध नहीं। यह एक माँ के साथ उसके बच्चों का भी अपमान था।



सीमा ने हिम्मत न हारी। एक अकेली महिला के लिये आसान नहीं कि वह डिमांडिंग जॉब करते हुए बच्चों को अच्छे संस्कार और अच्छी तालीम भी दे। काम पर जब देखो प्रमोद नागर कोई न कोई मुश्किल उत्पन्न करता ही रहता। सीमा लॉफ़बरो जैसे छोटे शहर में रहती है। लोगों को शीघ्र ही पता चल गया कि वह पति से अलग हो गई है। सुन कर प्रमोद नागर की हिम्मत थोड़ी और बढ़ गई।

सीमा प्रमोद के ऑफिस के बाहर से निकल रही थी कि कुछ सुनकर वहीं ठिठक गई.....प्रमोद बोल रहा था.....‘एक जवान औरत चाहे दूसरों के सम्मुख कितनी भी कठोर क्यों न बन जाए; परंतु अकेले में कभी तो मन मचलता होगा। अब वो समय दूर नहीं, जब वह स्वयं आकर यहाँ बैठेगी।’ प्रमोद जंघा पर हाथ मारते हुए कह रहा था और बाकी उसके चले चपाटे सब हँस रहे थे।

सब की हँसी ही नहीं मुँह भी बंद हो गए, जब दरवाज़े में सीमा को खड़े देखा।

सीमा धीरे-धीरे कदम उठाकर अंदर आई। वह सीधी आकर प्रमोद के सामने खड़ी हो गई। ‘क्या कह रहे थे आप मिस्टर नागर मैंने ठीक से सुना नहीं.....’ प्रमोद सीमा को वहाँ खड़ा देख कर सकपका गए, परन्तु तुरंत ही स्वयं को सम्भालते हुए बोले-‘बस यँही, कुछ पति द्वारा छोड़ी हुई औरतों की बात कर रहे थे, कि ऐसी औरतों को समाज किस नज़र से देखता है।’

‘यह शायद आप १६वीं सदी की बात कर रहे थे मिस्टर नागर; जब नारी सब प्रकार से पति के ऊपर निर्भर रहती थी। मैं आपको याद दिला दूँ कि यह २१वीं सदी है। आज की पढ़ी-लिखी नारी स्वयं ही सक्षम है और अपने परिवार को पालने की हिम्मत रखती है। आप जंघा पर हाथ मार कर कुछ कह रहे थे। ऐसे ही सदियों पहले किसी ने जंघा पर हाथ मार कर यही शब्द कहे थे और उसका हश्र क्या हुआ था, ये हम सभी जानते हैं।’

‘मैं तो यहाँ आज शाम की मीटिंग के विषय में कुछ बात करने आई थी।.....देख रही हूँ कि आप किन्हीं विशेष बातों में व्यस्त हैं... आपको समय मिले तो हम कुछ काम की बात कर लेंगे।’ कहते हुए सीमा ने प्रमोद का ऑफिस छोड़ दिया।

छोड़ना तो घनश्याम भी चाहता है इन यादों को। चाय का प्याला लेकर वह गैस फ़ायर के सामने रॉकिंग चेयर पर बैठ गया। उस के दूसरे हाथ

में वही चिट्ठी थी, जो अभी तक उसने खोल कर नहीं देखी थी।

सोचते हुए कि इस बार ठंड कुछ ज्यादा ही पड़ रही है, वह चाय की चुस्कियाँ लेने लगा। गर्म चाय थोड़ी कडुवी थोड़ी मीठी। हर घूँट कलेजे में गर्माहट छोड़ते हुए नीचे उतरने लगा। उसे बाएँ बाजू में हलका सा दर्द महसूस हुआ। उसने स्वयं को सांत्वना दी कि ठंड बहुत है, शायद इसलिए दर्द हो रहा होगा। अब जवानी तो रही नहीं, बुढ़ापे में इंजर-पिंजर भी तो ढीले हो जाते हैं। उसने शॉल को थोड़ा और चोरों ओर लपेट लिया।

दर्द तो उस दिन भी उठा था, जब वह शिकायत लेकर डॉक्टर के पास गया था।

‘डॉक्टर कभी-कभी सीने में और कभी बाजू में हल्का सा दर्द होने लगता है। शायद बदहजमी के कारण हो।’

कारण जानने के लिए ही डॉक्टर ने जाँच करते हुए कहा ‘मिस्टर गुप्ता आप डायबेटिक हो। हर समय यह सिगरेट आपके होठों के साथ चिपकी रहती है। एक अभी बुझने भी नहीं पाती कि आप दूसरी सुलगा लेते हो। छोड़ क्यों नहीं देते इस ज़हर को।’

‘सभी कुछ तो छूट गया है डॉक्टर। अब इसे भी छोड़ दूँगा तो जीऊँगा किस के सहारे। ये मेरी साँसों के साथ जलती है। इसके बुझते ही घनश्याम भी बुझ जायेगा।’ और एक ज़ोरदार ठहाका मार कर घनश्याम कुर्सी छोड़ कर उठ गया।

डॉक्टर जानते हैं कि इस ठहाके के पीछे कितना दर्द छुपा है।

इस दर्द की दवा कोई डॉक्टर नहीं दे सकता। चाय का खाली प्याला पास पड़ी मेज पर रखते हुए उसकी निगाह उस चिट्ठी की ओर गई।

उसने काँपते हाथों से लिफाफा खोला..... अंदर से एक कार्ड झाँक रहा था। घनश्याम ने जल्दी से कार्ड को निकाल कर पढ़ा....

हम सब की ओर से आपको अपनी ६५वीं वर्षगाँठ की बहुत बधाई!!!

पुनीत
कार्ड बेटे की ओर से था। ओह..... तो आज मेरा जन्मदिन है। अगर मैं ६५ का हो गया हूँ, तो सीमा भी तो ६० वर्ष की होने वाली है। कैसी लगती होगी वह पके बालों के साथ। अब तो चेहरे पर भी हल्की सी झुर्रियाँ पड़ गई होंगी। झुर्रियों के संग तो वह और भी सुंदर दिखती होगी। भई नानी-

दादी भी तो बन गई है और एक मैं हूँ.....तिरस्कृत पति, नाकामयाब पिता व कायर ग्रैंड डैड। यही तो है पहचान मेरी। सीमा को तो शर्म आती होगी बच्चों के सामने मेरा नाम लेते हुए भी।

शर्म आए भी तो क्यों न। मैं हूँ ही इस काबिल। जिसने बच्चों को तो छोड़ा, अपने नाती-पोतों की सूरत तक नहीं देखी। मुझ से अधिक बदनसीब और कौन होगा।

बायें बाजू के साथ अब तो सीने में भी दर्द उठने लगा था। कार्ड का लिफाफा हाथ से फिसल कर गोदी में गिर गया।

घनश्याम ने कठिनाई से दाहिना हाथ ऊँचा करके सिगरेट का एक ज़ोर से कश खींचा। सारी छाती सिगरेट के धुएँ से भर गई। उसे ज़ोरदार खाँसी आई। खाँसते हुए उसने फिर से कश लेने का प्रयत्न किया। इस बार वह हाथ उठाने में असमर्थ रहा। हाथ में इतनी भी ताकत न बची, कि दुखते हुए सीने पर रख सके।

साँसें पहले तेज़ और फिर धीमी होने लगीं। जलती हुई सिगरेट राख की लम्बी लकीर छोड़ती हुई उँगलियों में सुलगा कर बुझ गई।

□



SAI SEWA CANADA

(A Registered Canadian Charity)

Address: 2750, 14th Avenue, Suite 201, Markham, ON, LER0B6

Phone : (905)944-0370 Fax : (905) 944-0372

Charity Number : 81980 4857 RR0001

Helping To Uplift Economically and Socially Deprived Illiterate Masses Of India

Thank You For Your Kind Donation to **Sai Sewa Canada**. Your Generous Contribution Will Help The Needy and the Oppressed to win The Battle Against. Lack of Education And Shelter, Disease Ignorance And Despair.

Your Official Receipt for Income Tax Purposes Is Enclosed

Thank You , Once Again, For Supporting This Noble Cause And For Your Anticipated Continuous Support.

Sincerely Yours,

Narinder Lal

416-391-4545

Service To Humanity

मोरा पिया मोसे बोलत नाहि...

कंचन सिंह चौहान



अंग्रेजी एवं हिन्दी साहित्य से स्नातकोत्तर कंचन सिंह चौहान गन्ना विकास निदेशालय, लखनऊ में हिन्दी अनुवादक के पद पर कार्यरत हैं। वागर्थ, सुखनवर, कथाक्रम, अभिनव प्रयास, हिन्दी चेतना तथा अन्य पत्रिकाओं में लगभग 25 गीत, गज़लें, कहानियाँ एवं नज़्म प्रकाशित। कुछ टीवी शो में कवयित्री के रूप में कार्यक्रम प्रस्तुतीकरण।

संपर्क:

18/333 इन्दिरा नगर, लखनऊ 226016

ई-मेल:

kanchan_chouhan2002@yahoo.com

मोबाइल नं: 0919451051840

तब जबकि अविनाश के साथ चार साल के अफेयर के बावजूद शिवानी अब तक सुनीत के लिए महसूस किए गए गीतों को अविनाश के लिए नहीं गा पाई थी, ऐसे में अविनाश को फ़ोन पर कहते सुनना 'तुम चिंता क्यों करती हो, मैं हूँ ना तुम्हारी चिंता करने को।' कुछ सन्न-सा कर गया उसे। दिमाग अचानक बर्दाश्त नहीं कर पाया कि वो वाक्य, जो अब तक हर छठे घंटे में उसे सहारा देता था, वो बस उसी तरह, उसी बेफ़िक्री और उसी विश्वास के साथ दूसरे के लिए कहा जा रहा था।

धड़कनों का तरीका अचानक बदल गया। यूँ जब अविनाश अपनी उस नई फ़ियांसी से बात करता है, तो वो कान में हेडफ़ोन लगा लेती है, जानबूझ कर कि ना उसे कुछ सुनाई दे और ना वो असमान्य हो। मगर फिर भी, दिल भी ना अजीब सी चीज़ है। ये खुद को दुःखी करने के बहाने खुद ही ढूँढ़ता है। वर्ना सुनीत से धोखा खाने के बाद ये अविनाश से जुड़ा ही क्यों होता और अब जब अविनाश से एक और दरार ही मिली है, तो भी क्यों मजबूर करता इस कैब में उसके साथ ही ऑफिस जाने को।

और फिर सुनीत या अविनाश को क्या समझेगी शिवानी, जब खुद को ही नहीं समझ पा रही है कि क्यों जान कर भी सब कुछ, नहीं छूट पा रही है अविनाश से और नहीं छूट पाई बहुत दिन तक या अब भी सुनीत से।

शिवानी खुद भी जानती थी कि ये सिर्फ़ खुद की ग़लतफहमी बनाए रखने का तरीका मात्र था कि कैब में अविनाश के साथ आना उसकी मजबूरी है, क्योंकि उसका और अविनाश का घर साथ ही पड़ता है और पिछले 4 सालों से वो दोनों साथ ही आ रहे हैं।

तब, जब सुनीत ने अचानक शादी का कार्ड भेज कर, उस पर एक तीन बाई तीन की कार्डशीट पर कलात्मक तरीके से लिख कर भेजा था 'मैं तुम्हें खुद ये बताने की हिम्मत न कर सका।' शिवानी ने अपने फ्लैट की 10 वीं मंज़िल से सीधे पार्किंग में आ गिरा-सा महसूस किया था खुद को। और लगा था कि अब कभी भी नहीं उठ पाएगी वो दोबारा, अपने सारे हिस्से धज्जी हुए और बिखरे से दिख रहे थे उसे। अभी कल ही तो बात हुई थी सुनीत से। वही सहज सी, सीधी-सादी, प्रेम में पागल बातें थी उस दिन

भी। कहीं किसी भी बात में जिक्र भी तो नहीं किया था उसने कि शायद कुछ दिन में कोई लिफाफा मिले उसका भेजा हुआ। कल की गई उसकी बातों की मिठास अब तक कानों में घुली हुई थी। कम से कम तीन रातों उस गूँज से बिना नींद की हो ही जाती थी। मोबाइल अभी शुरू नहीं हुआ था, इतना ज़्यादा। इस बिल्डिंग में उस के कॉल सेंटर के तीन लोग थे अलग-अलग फ्लैट में। बिल्डिंग कैंपस के गेट पर हर 15 वें शनिवार को आता था, सुनीत का फ़ोन। और हर हफ्ते एक चिट्ठी। 2 साल से मिलना नहीं हुआ था, सुनीत से।

बनारस से बी. आर्क करने के बाद दोनों ने साथ ही छोड़ा था बनारस, अपना-अपना कैरियर बनाने के लिए। सुनीत को बेंगलूर में एक आर्किटेक्ट कॉलेज में पढ़ाने के लिये नौकरी मिल गई थी। मगर सेलरी अभी बहुत अच्छी नहीं थी। सुनीत ने कहा था कि बस खुद को और शिवानी को अच्छी जिंदगी देने भर की सेलरी हो जाने तक ही शिवानी को इंतज़ार करना होगा। फिर वो खुद ही माँ, पापा के साथ उसका हाथ माँगने आएगा बनारस में शिवानी के मम्मी-पापा से और तब तक शिवानी खुद का भी कैरियर बना सकती है। शिवानी खुशी-खुशी राजी हो गई थी, इस बात के लिए। आर्किटेक्ट के तौर पर कोई अच्छी नौकरी नहीं मिल पाने तक उसने दिल्ली के सबसे अच्छे कॉल सेंटर में ज्वाइन कर लिया था। अच्छी सेलरी और समय की कमी ने दूसरी कोई सर्विस अब तक करने भी नहीं दी।

सुनीत की शादी का कार्ड पाने के बावजूद साल भर तक वो हर 15वें दिन शनिवार को गेट पर फ़ोन का इंतज़ार करने से नहीं रोक पाई थी खुद को और शाम को सात से नौ बजे तक वहीं रहती, उसी गेट पर और फिर लौट आती। तब अविनाश होता था उसके साथ।

वो कितना मना करती थी अविनाश को कि उसके साथ परेशान ना हो। मगर कहाँ मानता था वो। बस ये कह कर साथ बैठा रहता था कि 'मुझे अच्छ लगता है, तुम्हारा साथ।' लौटते समय कितनी उदास होती थी शिवानी, एक दम चुप...!

मगर अविनाश ने कभी उस चुप्पी में दखल देने की कोशिश नहीं की थी। हाँ ये ज़रूर कहा था अक्सर 'सुनीत बहुत अभागा था, काश! मेरी जिंदगी में कोई इतना प्यार करने वाली लड़की आ जाती, तो मैं सारी दुनिया छोड़ कर उसका हो जाता।'



आँखों की नमी के साथ मुस्कुरा कर शिवानी कहती 'नमिता है तो तुम पर फिदा।'

'हुँह ! दिल्ली में फिदा होने की पर्मानेंसी इंपासिबिल है बेबी। ये तो तुम बनारस से ले के आ गईं जाने कैसे' अविनाश अपने खिलंदड़े अंदाज़ में कहता तो शिवानी को अपने दर्द पर गर्व होने लगता।

अविनाश उसके लिए रोने का कंधा बन गया था। जब भी वो भर जाती तो अविनाश के सामने खूब रो लेती। अविनाश बहुत धैर्य के साथ उसका रोना सुनता, कभी-कभी आँसू पोंछ देता, कभी बहने देता और जब शिवानी जी भर के रो चुकती तो फ्रिज की बॉटल से उड़ेल कर ठंडा पानी, उसके हाथ में थमा देता। फिर थोड़ी देर में माज़ा, रीअल जूस जैसी कोई सॉफ्ट ड्रिंक या चाय, कॉफी कुछ भी ट्रे में ला कर एक शिवानी के हाथ में थमा, दूसरा खुद पीने लगता। सोफे पर बैठे एक हाथ में कप या ग्लास पकड़े अविनाश का दूसरा हाथ जब आहिस्ता से शिवानी के लेज़र कट बालों में आ कर उसे धीमे से सहलाने लगता, तो शिवानी को लगता कि दर्द पिघल कर निकल रहा है। और वो अपना सिर अविनाश के कंधे पर छोड़ देती।

साल बीत रहा था। शिवानी और अविनाश अब सहेलियों की हद के मित्र थे। शिवानी अविनाश से उसी तरह सुख-दुःख बाँटती, पूरे दिन का कच्चा चिट्ठा देती। कितनी ही बार रात में देर होने पर डिनर का ऑफर देते हुए शिवानी ने अविनाश को रोक लिया था और फिर रात भर अविनाश उसी के फ्लैट में बेड पर और शिवानी नीचे सो गए थे। दोनों में

कुछ भी असहज नहीं था।

शिवानी को पता था कि अब सुनीत का कॉल आने वाला नहीं फिर भी वो आदतन 15 वें शनिवार को गेट पर बैठ जाती। इस पूरे साल ने सर्दी, गर्मी, बारिश सब देखे थे, मगर उस गेट पर शिवानी के बगैर नहीं।

उस दिन जब शिवानी गेट पर इंतज़ार कर रही थी, तभी अचानक पानी जोरों से बरसने लगा। अविनाश ने शिवानी को घर चलने को कहा, मगर शिवानी ने कहा 'तुम जाओ, मुझे भीगने का मन है।'

अविनाश बिना कुछ बोले दौड़ता हुआ चला गया और मिनटों में एक छतरी के साथ हाज़िर हो गया। कुछ मिनटों में छतरी के नीचे दोनों बरस रही बारिश से बचे हुए, मगर बरस चुकी बारिश से भीगे हुए खड़े थे। 9 बज गए थे। शिवानी अपनी चुप्पी के साथ अपने फ्लैट की तरफ चल दी। अविनाश भी उसी चुप्पी की तरह उसके साथ-साथ चलता गया। नवंबर की बारिश, तन में सिहरन पैदा कर देती है। शिवानी अपने दुपट्टे को शाल की तरह अपने चारों तरफ लपेट कर सिमट गई थी।

फ्लैट पर पहुँच कर अविनाश ने कहा 'मैं कॉफी बनाता हूँ।'

बाहर की बारिश थी या जाने क्या, शिवानी की आँखें फिर नई चोट की तरह बहने लगीं। कॉफी की चुस्कियों के साथ आँसुओं को थामने की कोशिश करते हुए शिवानी का सिर फिर अविनाश के कंधे पर था और अविनाश का हाथ फिर से शिवानी के लेज़र कट बालों में। शिवानी के गिरते हुए आँसू पर हौले से अपना होंठ रख दिया था अविनाश ने और शिवानी ने आँखें बंद कर ली थीं। अविनाश के होंठ अपना रास्ता ढूँढ़ कर शिवानी के होंठों तक पहुँच गये। शिवानी की आँखें अब भी बंद थीं।

टीन एज़ में रिश्ते के जीजा जी के कंधे पर हाथ धरते ही चिहुँक उठी शिवानी को जब भी सुनीत ने हाथ थामने से आगे बढ़ कर लपेटने की कोशिश की शिवानी ने मुस्कुरा कर स्थिति का रुख मोड़ दिया था और 'ऊँसुसुहु' कह कर सुनीत का हाथ फिर से हाथ में ले आगे बढ़ गई थी।

मगर आज वो जाने तीस की उम्र पार करता हुआ एकांत था, बाहर की बारिश का ठंडापन था या अविनाश की बाँहों की पकड़ की गर्माहट,

शिवानी बिना कुछ बोले बिखरती चली गई और अविनाश उसे सारी रात समेटता रहा। सुबह दोनों के बीच रात की कोई चर्चा नहीं थी।

कैब आई और दोनों फिर रूटीन्ड वे में कॉलसेंटर पहुँच गए। मगर हाँ उस दिन के बाद शिवानी 15वें शनिवार को गेट पर फ़ोन के इंतज़ार में नहीं गई।

अविनाश अक्सर कहता कि ये उसकी पूजा का फल है जो शिवानी आख़िर अब उसकी है। सारी दुनिया में बस एक वफ़ादार लड़की थी, वो अब अविनाश की है। शिवानी मन में ईश्वर को धन्यवाद देती कि उसने आख़िर एक सच्चे प्रेमी से उसे मिलाया।

सुनीत एक दुःखद अनुभव था। मगर उसके खत अब भी शिवानी ने सँभाल कर रख रखे थे।

प्रेम के चरम क्षणों में जब अविनाश पागल-सा हुआ होता, शिवानी के साथ। शिवानी कसकती आवाज़ से पूछती 'मुझे सचमुच प्यार करते हो ना अविनाश ?' जवाब में शिवानी की गर्दन पर दो और स्नेहांक मिल जाते। शिवानी अविनाश का चेहरा उठाते हुए पूछती 'नहीं, मुझे तुम्हारे मुँह से सुनना है।' अविनाश प्रश्न के बदले प्रश्न करता 'तुम्हें क्या लगता है ?' और शिवानी को एक क्षण पहले जो लग भी रहा होता, वो ना लगता।

'मैं यहाँ इस तरह हूँ क्या यही इस बात का सुबूत नहीं।' अविनाश फिर प्रश्न करता। शिवानी को लगता 'हाँ ! यही सबसे बड़ा सुबूत है।' और शिवानी अगला पिछला सब भूल कर अविनाश के मांसल कंधों में अपनी छितराई चारों उँगलियाँ धँसाते हुए, वर्तमान में बह जाती।

कैब पर जाने को जब अविनाश शिवानी के घर पर उसे लेने आया तो स्टोल के नीचे पड़े निशान को देखते हुए पूछा था 'ये क्या हुआ ?'

'अरे यार, कल रात कोई कीड़ा चल दिया, देखो न जहाँ तक चला निशान बनाता चला गया।' शिवानी ने टॉप के नेक को खींच कर नीचे करते हुए दिखा कर मुँह बनाया।

अविनाश ने उस निशान पर हौले से उँगलियाँ चलाते हुए शरीर आँखों के साथ पूछा 'ये तो मेरी जगह थी ना, यहाँ तुमने किसी और को आने क्यों दिया ?' झूठा गुस्सा दिखाते हुए शिवानी बोली 'चलो हटो, हमेशा बस एक ही मूड में रहते हो।'

'तुम जिसकी जिन्दगी में रहो उसकी हिम्मत कहाँ कि मूड चेंज कर ले मेरी जान,' कह कर चेहरे

पर झुकते चेहरे को जबर्दस्ती ढकेलते हुए बाहर लाई थी शिवानी और दोनों कैब पर बैठ गए थे।

ऑफिस में अविनाश ने शिवानी से कहा था कि 'अचानक घर जाना पड़ेगा, डैड ने बुलाया है।'

शिवानी ने गंभीर होते हुए कहा था 'इस बार सीरियसली मम्मा से बात कर लेना, हम सेटल कब होंगे अब आख़िर।'

'शायद वही सब बात करने को ही बुलाया है डैड ने। तुम साइट पर वेडिंग लँहगा चूज़ करो दो दिन। सेटरडे ऑफ है ना। मैं सेटरडे आऊँगा, वहीं तुम्हारे प्र्लैट पर तुम मैक्रोनी बना के रखना, मैं आकर कॉफी पिलाऊँगा तुम्हें।' और होंठों पर अपने प्रेम का स्वाद दे कर चला गया था अविनाश।

शिवानी ने उस स्वाद के सहारे पूरे दो दिन निकाले थे। ढेरों लँहगे और अविनाश के लिए इण्डोवेस्टर्न डिजाइन की दूल्हे की ड्रेस चुन ली थी इस बीच। घर को कितनी-कितनी तरह से सेट कर दिया था, अविनाश को सरप्राइज़ करने के लिए। सुबह तीन बजे अविनाश की ट्रेन को दिल्ली पहुँचना था, शिवानी रात भर हर घंटे फ़ोन कर उसकी लोकेशन लेती रही थी। स्टेशन से प्र्लैट तक पहुँचने में डेढ़ घंटे लगे थे। सुबह पाँच बजे के लगभग ही, शिवानी की मैक्रोनी तैयार थी।

डोरबेल बजने पर इस उम्मीद के साथ दरवाज़ा खोला था शिवानी ने कि दरवाज़ा बंद होने का इंतज़ार किये बगैर अविनाश कस लेगा उसे और छुड़ाने की लाख कोशिश के बावजूद, वो कम से कम आधे घंटे तो कहीं जकड़ ढीली ही नहीं करेगा,



ये उसका पुराना अंदाज़ है। एक दिन दूर चला जाता है तो बहुत क्रेज़ी हो जाता है वो। इसीलिए बेड की चादर ठीक कर के आई थी दरवाज़ा खोलने।

'हाय स्वीटहार्ट' कह कर अविनाश अंदर आ गया था। कुछ अप्रत्याशित-सा था ये शिवानी के लिए।

'बहुत थक गए हो।' उसने पूछा।

'हम्म...!' कह कर पसर गया था बेड पर।

शिवानी ने इटलाते हुए कहा 'ये लो मैंने तो तुम्हारे कहे से मैक्रोनी बना ली और तुम अपनी कॉफी कब बनाओगे ?'

अविनाश ने लेते हुए ही हाथ बढ़ा कर शिवानी को खींच कर बैठाते हुए कहा था 'बैठो थोड़ी देर मेरे पास। अभी पिलाता हूँ कॉफी।'

शिवानी चुपचाप बैठ गई थी, वहीं बगल में। उसके टॉपलेस नाइट गॉउन पर अब तक अविनाश का कोई कमेंट नहीं आया था। ये आश्चर्य की बात थी। अविनाश ने शिवानी का हाथ अपने हाथों में कस लिया। शिवानी चुपचाप उसके बाल सहलाती रही। अचानक, शिवानी को अविनाश की छुअन कुछ खटकती। आज कुछ दरक रहा था, उँगलियों के बीच। शिवानी ने गौर किया, तीसरी उँगली में एक नग जड़ी रिंग थी। शिवानी ने उस उँगली को पकड़ते हुए पूछा 'ये क्या है।'

अविनाश ने शिवानी की गोद में सिर छिपा लिया और सँधी आवाज़ में कहा 'मुझे माफ कर दो शिवी।' शिवानी को झटका-सा लगा, वो अविनाश को पीछे ढकेल कर तेज़ी से उससे अलग होते हुए बोली 'मतलब क्या है तुम्हारा ? तुम ... कहना क्या चाहते हो ?' और अचानक से फिर 'तुम कह क्या रहे हो अविनाश ?' 'तुम... तुम...!!' 'सच बोल रहे हो तुम ?' कहते हुए जाने कितने-कितने भाव आए और जाने कितने तरीकों से जो समझ रही थी, उसे ना समझने का प्रयास किया था शिवानी ने।

अविनाश दूर बैठा था। अपराधी भाव से। शिवानी ने उस पर झपटते हुए कहा 'तुम समझ रहे हो कि तुम क्या कह रहे हो अविनाश ? तुम समझ रहे हो ?' और झिंझोड़ डाला था उसे।

'मैं क्या करता शिवानी ? माँ, पिता जी को नमिता ने सब बता दिया था। उन्होंने मुझसे पूछे बगैर सब कुछ इंतज़ाम कर लिया और जब मैंने विरोध किया तो माँ ने नौद की गोलियाँ खा लीं। किसी तरह से उन्हें सँभाला। अगले दिन के लिए

एंगेजमेंट का सारा इंतजाम था। पापा के दोस्त की बेटी है वो। अभी रशिया से डॉक्टर बन के आई है।’

इस बार बिल्डिंग की किस मंजिल से गिरी थी शिवानी, ये समझ ही नहीं आ रहा था। बस शून्य हो गया था दिमाग। कहे तो क्या ? करे तो क्या ? निर्निमेष सी देख रही थी वो सामने।

अविनाश ने उसके बालों की तरफ हाथ लाते हुए कहा था ‘तो क्या हुआ शिवानी हम हमेशा एक रहेंगे। इन चीजों से हमारे बीच कुछ नहीं बदलेगा।’ और आते हुए हाथ को बीच में ही झटक दिया था शिवानी ने।

‘एक और धोखा ? एक और लड़की से ? तुम्हें शर्म नहीं आती अविनाश ?’ शिवानी ने लाल हुई आँखों से सीधे अविनाश की आँखों में देखते हुए कहा।

अभी कुल बीस ही दिन तो हुए हैं इस बात को। शिवानी के अंदर का तूफान जोर और जोर पर था और अविनाश में तूफान के बाद की शांति आ गई थी। कैब का साथ था अब भी। फ़ोन पर जब

श्रेयांश बात करता तो ऐसा लगता था कि शायद अविनाश और उसकी फियांसी बात करते हैं, मगर शिवानी सुनना नहीं चाहती थी। मगर आज जाने क्या हुआ ? जाने मन ने क्यों कहा कि शायद अविनाश उसके साथ बात करने में नॉर्मल नहीं रहता होगा। बस फॉर्मल बातें ही करता होगा। वही जो बोलती होगी, उसका जवाब दे देता होगा। इतना आसान तो नहीं ना किसी रिश्ते से एकदम से दूसरे में ट्रांसफॉर्म हो जाना। फिर अविनाश तो बिलकुल ऐसा नहीं। उसे तीन साल से हर तरह से आजमा के देखा है शिवानी ने।

मोबाइल पर पॉज की बटन दबाने के साथ आवाज़ आई ‘तुम चिंता क्यों करती हो, मैं हूँ ना तुम्हारी चिंता करने को।’

‘क्यों रशिया में नहीं होते लाइट वाले कीड़े ?..... कहाँ? वो तो मेरी जगह थी ना ? वहाँ उसे क्यों आने दिया ?’

‘आप जिसकी मंगेतर हो उसकी क्या मज़ाल कि वो दूसरे मूड में हो जाये।?’

‘आपको क्या लगता है?’

‘मैं कैब में रोज़ डेढ़ घंटे का सफर आपके साथ-साथ और पूरी रात आपके साथ मोबाइल पर रहता हूँ, क्या यही इस बात का सुबूत नहीं।’ शिवानी ने अचानक अविनाश के चेहरे की तरफ देखा, वो आँखें बंद किये मुस्कुरा रहा था। उसी आनंद में डूबा, जिसकी गवाह कभी शिवानी हुआ करती थी।

शिवानी ने जोर से आँखें भींच लीं। उसे लगा कि अविनाश कैनवास पर ब्रश से पेंटिंग करते हुए शिवानी की तसवीर के ऊपर किसी और की तसवीर बना रहा है और बखूबी बना रहा है। उसने झट से आँखें खोली और फिर से आँखें बंद कर के कैनवास पर खुद एक तसवीर बनानी चाही। दो तसवीरें अलग-अलग मुस्कुरा रही थीं। सुनीत और अविनाश दोनों अलग-अलग थे, फिर दोनों एक हो गए और फिर दोनों अलग। दोनों हँस रहे थे शिवानी पर। शिवानी ने कैनवास की धज्जियाँ उड़ा दीं। बिखेर दिया हवा में। मगर हर टुकड़े में वो दोनों हँस रहे थे। अब भी अलग, अलग।



UNITED OPTICAL

WE SPECIALIZE IN CONTACT LENS

- Eye Exams
- Designer 's Frames
- Contact Lenses
- Sunglasses
- Most Insurance Plan Accepted

Call : Raj

416-222-6002

Hours of Operation

Monday - Friday - 10.00 a.m. to 7.00 p.m.

Saturday - 10.00 a.m. to 5.00 p.m.

6351 Yonge Street, Toronto, M2M 3x7 (2 Blocks South of Steeles)



इष्टाबाई

सरस दरबारी

मुंबई की बारिश....जब बरसनी शुरू होती है तो महीने-महीने भर सूरज के दर्शन नहीं हो पाते.....नदी, नाले, परनाले सब पूरे उफान पे होते हैं... लेकिन जीवन फिर भी नहीं रुकता....घुटने-घुटने पानी में भी बच्चे स्कूल जाते हैं और रेलवे ट्रेक्स में पानी भरने के बावजूद लोग ऑफिस जाना नहीं छोड़ते।

ऐसी ही भयानक बारिश की वह रात थी.. बहुत देर हो चुकी थी। पर दशरथ का कोई अता-पता नहीं था। वह शाम से ही घर से गायब था। इष्टा घर पर परेशान उसका इंतज़ार कर रही थी। रात गहराती जा रही थी और बारिश रुकने का नाम ही नहीं ले रही थी। उसका सब्र छूटता जा रहा था। जब अंदेशे हावी होने लगे और अनर्थों की झड़ी लगने लगी तो उससे रहा नहीं गया और वह एक छिदहा छाता लिये उस तूफानी रात में उसे खोजने निकल पड़ी।

मोहल्ले की हर वह हौली, जहाँ से वह दशरथ को अनेकों बार उठाकर लाई थी, सभी यार दोस्तों के ठिकाने जो उसके पीने के साथी थे, हर वह जगह जहाँ उसके होने का ज़रा भी अंदेशा हो सकता था, उसने छान मारा। पर दशरथ का कहीं पता न था। वह रोती हुई ..लगभग चीखती हुई ...उस बारिश में उसका नाम ले लेकर पुकार रही थी। पर दशरथ नदारद। वह रोती-रोती परेशान बेहाल उसे ढूँढ़ ही रही थी जब घर के पास वाले एक गटर में वह उसे पड़ा मिला। जगह-जगह कटा-फटा। उसे इस हाल में देख उसका कलेजा मुँह को आ गया।

‘कहीं...!’ आशंका ने फन उठाया।

‘नहीं नहीं’.... उसने फन को कुचल दिया।

उसे पहले हौले से हिलाया डुलाया, वह नहीं बोला। फन में फिर हरकत हुई। उसने उस पर फिर वार किया-‘दशरथ उठ रे’, वह उसे झकझोरते हुए चीखी, तभी कुछ हलचल हुई और वह नशे में बड़बड़ाया।

इष्टा की जान में जान आई ‘रे देवा दया कर।’

जब वह आश्चर्य हो गई कि वह जिंदा है, तब भीतर दबा सैलाब गालियाँ बनकर दशरथ पर बरसा।

‘अरे मेल्या कायको मेरा जीवन सत्यानास करता है रे’ ‘इंद्र दारू पीकर गटर में पड़ा है और मैं अक्खा कालोनी में ढूँढ़ती तेरे कोमेरे को एक इंच बार में मार डाल न रे, नइ तो तूच मर जामेरे जीव के पीछे कायको पड़ा है ?’

और नशे में धुत दशरथ सुनता रहा। उसके प्रलाप का उसपर कोई असर नहीं हो रहा था। भड़ास कम हुई तो उसे सहारा दे, भीगती हुई, उसे छाते के नीचे बारिश से बचाती हुई, लड़खड़ाती, सँभालती किसी तरह घर पहुँची।

मूसलाधार बारिश हो रही थी। इंद्र का प्रकोप हावी था। भरी दोपहरी में भी रात का अंदेशा हो रहा था। देखते ही देखते घुटनों तक पानी भर गया। तभी किसी को गेट से आते हुए देखा। धूमिल आकृतियों से अंदाज़ा लगाया कि तेज़ हवाओं से अस्त-व्यस्त छाते को जैसे-तैसे सँभालती हुई कोई औरत, बारिश और हवा के थपेड़ों से, अपने आप को बचाती हुई, बगल में कोई चौदह-पंद्रह साल के बीमार लड़के



सरस दरबारी का साहित्यिक पत्रिका ‘दीर्घा’ में ‘विशेष फोकस’ के अंतर्गत 11 कविताओं का प्रकाशन। शब्दों के अरण्य में, अरुणिमा, बालार्क, एवं शब्दों की चहलकदमी साझे काव्य संग्रह। इष्टाबाई, सरस जी की दूसरी कहानी है। ईमेल-sarasdarbari@gmail.com

को भींचे हुए इसी ओर आ रही थी।

दरवाजे की घंटी बजी।

‘अरे इष्टा तुम ...और यह कौन है?’

‘मेरा मरद है दीदी।’

‘कौन दशरथ ..उसे क्या हुआ!’

‘अरे दीदी मई अब क्या बोलूँ...दारु पीके नाली में पड़ा था मेल्याकब्बी से ढूँढती थी उसकू। अब्बी डॉक्टर के पास जाती ...लई चोट लगा है उसकू।’ दीदी मई आज दोफेर को काम पे नै आएगी...बस इतना इच बताने को आयी थी।’

दशरथ की हालत और उससे अधिक इष्टा की चिंता देख, कुछ और कहना उचित नहीं समझा।

एक दिन काम पर आई तो देखा चेहरा सूजा हुआ है और एक आँख नीली हुई पड़ी थी। पूछने पर पहले तो बात को टालती रही, लेकिन जब डाँटा, तो रोती हुई बोली-‘दीदी दशरथ का लीवर खराब हो गयेला है ...डॉक्टर मेरे को बोला, अउर दारु पियेगा तो मर जाएगा। मई उसको मना की दारु पीने कोवह दारु का वास्ते पईसा माँगता था ..मई नई दी बोलके मेरेको बहोत मारा ससाला....’..कहकर फिर रोने लगी ..

मैंने कहा, ‘वह बिते भरका आदमी तुमको मारता कैसे है ..तुम इतनी हट्टी कट्टी..लम्बाई में उससे दुगुनी..क्यों मार खाती हो?’

इष्टा पहले तो चुपचाप मेरी बात सुनती रही फिर धीरे से बोली, ‘क्या करूँ दीदी ...वह देखने में छोटा है पर लै (बहोत) मारता है मेरे कोदारु पी पीकर वाट लगाकर रखा है अक्खा शरीर का, मई मारेगी तो मर इच जायेगा वह। रोज दारु पीकर आता है और छोटा-छोटा बात पे खाली फ़ोकट झगड़ा करता है ...मई कुछ बोलती तो बहुत मारता है ...काम पे बी जाने को नई देता ...बोलता है बाहर जाके उल्टा सीधा काम करती।’...कहते-कहते फूटकर-फूटकर इष्टा रोने लगी.....उसकी बेबसी चुभ गई भीतर तक ...इष्टा जैसी न जाने कितनी हमारे मोहल्लों में, झोपड़ पट्टी में, रहती हैं दिन भर काम कर कर हलकान भी रहती है और, ऐसे निखट्टू, नालायक पतियों की लात घूँसे और बातें भी बर्दाश्त करती हैं।

रोकर मन कुछ हल्का हुआ तो बोली, ‘दीदी काम पे नई जायगी तो घर कईसे चलाएगी ...दो छोटा-छोटा बच्चा है, लड़की पण सायानी हो गई ...लगन करने का है उसका ...कईसे करूँ..आपीच

बोलो।’

इष्टा का यह हाल देख खून खौल कर रह गया। हिम्मत कैसे होती है इन लोगों की, खुद तो कुछ करते नहीं, धरती पर बोझऔर अपनी पत्नी पर इतना गन्दा लांछन लगाते हुए ज़बान नहीं काँपती?इतनी घटिया बात सोच भी कैसे सकते हैं? वह औरत तुम्हारा घर चला रही है, तुम्हारे बच्चे पाल रही हैऐसे लोगों को तोऔर फिर अचानक इष्टा का चेहरा आँखों के सामने आ गया ..उसके चेहरा जैसे इल्लिजा कर रहा था ...दीदी जाने दो न।

लेकिन गुस्सा बहुत आ रहा था, दशरथ पर, और उससे ज्यादा इष्टा पर!

इष्टा के जाने के बाद उसकी बातें बहुत देर तक दिमाग उलझाती रहीं। रह-रह कर बस एक ही खयाल आता यह कैसी कौम है ...सारा काम औरत करे, घर वह चलाए, बच्चे वह सँभाले, राशन पानी का इंतजाम वह करेपति की ज़रूरतें पूरी करेऔर दिन भर बाहर मेहनत करने के बाद पति से मार भी खाए ...और उसपर तुरा यह कि तुम उलटे सीधे कामों से पैसे कमाती हो...छी..... कितनी नीच सोच है इस कौम कीपिस्सू कहीं के!!!!..बस कमाऊ बीवी पर हुकुम चलाने, मारने पीटने में ही अपनी मर्दानगी दिखाना चाहते हैं। अगर मर्द होने का इतना ही गुमान है तो क्यों नहीं अपनी जिम्मेदारी उठाते। रखें बीवी को घर पर, कमाएँ चार पैसे और बीवी के हाथ पर धर दें। लेकिन नहीं, उनकी मर्दानगी केवल अपनी बीवी को दबाकर रखने में है। पैरासाइट है यह पूरी कौम पिस्सू कहीं के!!!

पिस्सू ...जो उसीका खून पीते हैं ...जिसके शरीर पर पलते हैं. ..दशरथ भी उसी कौम का था।

एक बार बातों ही बातों मैंने पूछा था उससे की ‘क्या आराम हैं तुझे इससे ...तू ही कमाकर उसे खिलाती हैं, पाँच घर काम करती हैं, चार पैसे कमाती है, जो वह मार पीटकर तुझे छीन लेता है....कौन सा आराम हैं तुझे उससे। उस पर मरहम पट्टी का खर्चा अलग।’

इष्टा बोली, ‘दीदी जैसा बी हैं ...मरद तो हैं। एकली औरत नई रह सकती इस दुनिया में। बहुत गन्दा लोग हैं दीदी। एकली ..उपरसे गरीब। तुम्हीच सोचो दीदी झोपड़पट्टी में रहती मै। मरद हैं बोलके, यह टिकुली, यह मंगलसूत्र दीखता लोगों को। एक

मरदवाली हूँ बोलके कोई जल्दी नई बोलता मेरे को, पर एकली हो गई तो गिद्ध का माफक खा जायेंगे मेरेकू।’

इष्टा के जाने के बाद उसका यह तर्क, दिमाग में उथल-पुथल मचाता रहा। अपने लहजे में एक बहुत कड़वा सच कह गई थी वह ...जो विद्रूप था धिनौना था, असहनीय था और जिसके आगे हम सब बेबस हैं। यह सिर्फ इष्टा का सच नहीं था ...यह उस समाज का सच था, उस की मानसिकता का सच था, जिसमें हम रहते हैं।

हम अपने आपको प्रबुद्ध वर्ग की श्रेणी में रखते हैं...क्या हमारी भी कुछ ऐसी ही सोच नहीं है ? हाँ शायद हमारे शब्द उसकी तरह क्रूड न हों, लेकिन सच्चाई तो उतनी ही क्रूड है न। यहाँ एक डाइवोर्सी या विधवा का ठप्पा किसी औरत पर लग जाये तो लोग उसे ‘फ्री फॉर आल’ समझने लगते हैं। फिर तपका चाहे जो भी हो ..मानसिकता तो वही रहेगी न। पति का नाम एक लक्ष्मण रेखा है ...जिसे शरीफ लाँघने से डरते हैं ...विकृत मानसिकता के आगे तो कोई भी दीवार नहीं टिक सकती ...फिर एक लकीर की क्या औकात। नियम तो सदा शरीफों के लिए ही बने हैं...दानवों के लिए नहीं ...और ऐसे में हर कदम फूँक-फूँक कर रखना होता है, खास तौर पर हम औरतों को। और इष्टा वह तो सुन्दर भी थी, साँवली, सलोनी, जब मुस्कुराती तो सफ़ेद दाँतों की पंक्ति खिल जाती। उस पर उसका स्वाभावइस सबके बावजूद भी हमेशा खुश दिखाई देती ...उसे देख मायूस चेहरे के भी कौंटूँस बदल जाते। उसे अपने आपको सुरक्षित रखना था।

ऐसे में पति के नाम का यह कवच हर औरत चाहती है। इष्टा भी चाहती थी। फिर कहाँ गलत थी इष्टा। वह समाज के जिस वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रही थी, उनके लिए तो दो जून रोटी मुहैया करने की चिंता ही इतनी बड़ी थी कि सारी जद्दो जेहद वहीं तक आकर सिमट जाया करती थी। उन्हें भला जीवन की बारीकियों से क्या वास्ता?

उस अनपढ़ कामवाली बाई ने जीवन की एक बहुत बड़ी सच्चाई मेरे सामन उघाड़ कर रख दी थी। वह सच जिसे हम झूठे आश्वासनों में भुलाये रहते हैं। कितना आसान होता है दूसरों को नसीहत देना, लेकिन हम सब भी तो काफी हद तक इसी सच्चाई को ढो रहे हैं।





विलियम पैट्रसन यूनिवर्सिटी, न्यू-जर्सी में हिन्दी भाषा और साहित्य की प्राध्यापिका, कथाकार, कवयित्री अनिल प्रभा कुमार का 'बहता पानी' कहानी संग्रह और 'उजाले की क्रसम' कविता-संग्रह हैं। न्यूयॉर्क के स्थानीय दूरदर्शन पर कहानियों का निरन्तर प्रसारण। हंस, अन्यथा, कथादेश, वागर्थ, परिकथा, आधारशिला, हिन्दी चेतना, गर्भनाल, लमही, शोध-दिशा और वर्तमान-साहित्य आदि पत्रिकाओं में कहानियाँ छपती हैं। 'ज्ञानोदय' के 'नई कलम विशेषांक' में 'खाली दायरे' कहानी पर प्रथम पुरस्कार। 'अभिव्यक्ति' के कथा-महोत्सव में 'फिर से' कहानी पुरस्कृत हुई।
ईमेल: aksk414@hotmail.com,
मोबाइल: ९७३-६२८-१३२४
संपर्क: 119 ओसेज रोड, वेन, न्यू-जर्सी
07470, यूएसए।

बहता पानी

अनिल प्रभा कुमार

मालूम था उसे कि इस बार कुछ बदला हुआ ज़रूर होगा। मायका होगा, माँ नहीं होगी। पीहर होगा, पिता नहीं होंगे। भाई के घर जा रही है। भाभी होगी, भतीजी ससुराल में होगी। कैसा लगेगा? इस प्रश्न के ऊपर उसने दरवाज़े भिड़ा दिये थे। एक दर्शक की तरह तैयार थी भावी का चलचित्र देखने के लिए।

हवाई-अड्डे से बाहर निकलते ही एक रुलाई सी दिल पर से गुज़र गई। क्या इस बार उसे लेने कोई भी नहीं आया? भीड़ में ढूँढ़ती रही अपनों के चेहरे। भीतर-बाहर सब देख कर जब फ़ोन की तरफ़ बढ़ रही थी तो भाई दिख गया। उसका छोटा भाई, जिसके साथ लाड़ का कम और लड़ने-डाँटने का रिश्ता ज़्यादा था।

'मैं तो तुम्हें अन्दर ढूँढ़ रहा था।'

'मैंने समझा शायद तुम बाहर होगे।'

भाई ने सूटकेसों से भरी ट्रॉली का हत्था अपने हाथ में ले लिया और आगे बढ़ गया।

हमेशा ऐसे ही वह उससे मिलता है। मिलने की कोई औपचारिकता वह कभी भी नहीं करता।

वह पीछे-पीछे चल दी।

भाई ने ऊपर की घंटी बजाई। वह वहीं उस चुप अन्धेरे में दरवाज़े पर ही खड़ी रही। पिता की मृत्यु के बाद आज पहली बार आई है।

भाई ने उसका कंधा छुआ-'चल, ऊपर ही चल।'

वह चुपचाप उसके पीछे सीढ़ियाँ चढ़ने लगी।

ऊपर की मंज़िल पर शायद नीचे का शोर पहुँच चुका था। कुत्ता ज़ोर-ज़ोर से भौंकने लगा। वह उसे नहीं पहचानता। भाभी ने दरवाज़ा खोलने से पहले कहा, 'वहीं रुकिए दीदी, इसे एक मिनट बाँध लूँ।' वह फिर वहीं बन्द दरवाज़े के आगे खड़ी रही, जैसे घर के बाहर के लोग खड़े होते हैं।

सभी थके थे। थोड़ी-सी औपचारिकता के बाद सोने चले गये। वह पलंग पर लेटकर अपने परिवेश से पहचान बनाने लगी। यह पहले दादी का छोटा कमरा हुआ करता था। भाई की शादी हुई तो भाई-भाभी का कमरा हो गया। फिर रिया बड़ी हो रही थी तो उसके पढ़ने का। भाई-भाभी ने साथ का कमरा बड़ा करवा लिया था। रिया की शादी के बाद यह कमरा मेहमानों के ठहराने का-जिसमें आज वह ठहराई गई है।

वह छत पर नजरें गड़ाए बीते हुए को ढूँढ़ती रही-जैसे साबुन से बनाए बुलबुलों के साथ खेलती हो। इन्द्र-धनुषी बुलबुले, हाथ में आते और गुम हो जाते।

कहीं आधी नींद में दादी के साथ पलंग पर लेट कर कहानी सुन रही है। हमेशा एक ही कहानी। एक राजकुमार, राजकुमारी को किसी राक्षस के चंगुल से छुड़ाने के लिए यात्रा पर निकल पड़ता है। रास्ते में एक साधु मिलता है, जो उसे राजकुमारी तक पहुँचने का रास्ता बताता है। साधु ने कहा-‘पर शर्त यह है,’ दादी जोर देकर, उसके चेहरे के भाव देख कर रुक जाती है। ‘पीछे मुड़कर नहीं देखना। तुम्हें छलने के लिए पीछे से बहुत आवाजें आएँगी, पर तुम बस पीछे नहीं देखना, नहीं तो पत्थर हो जाओगे।’

वह फटी हुई आँखों से कहानी सुन रही है।

उसकी नींद खुल गई। उठ कर बाहर आ गई। कोहरे की खुशबू में अपने देश की सुबह को जीती रही।

पापा जी भी तो यूँ ही बॉल्कनी में खड़े होकर दिल बहलाया करते थे। दोनों खंभो के बीच खड़े, वह फ्रेम में जड़े किसी चित्र से ही लगते थे।

पिछली बार जब वह वापिस अमरीका जा रही थी तो एयर-पोर्ट पर विदा करने जाने की उनमें शक्ति नहीं बची थी। यूँ ही गर्म दुशाला ओढ़े, उसी खिड़की में-चित्रवत् से खड़े हाथ हिलाते रहे थे। तब तक, जब तक गाड़ी एक-तरफा सड़क पर आगे बढ़ कर, चक्कर मार कर, दोबारा घर के सामने से नहीं गुजर गई। वही उनका बॉल्कनी में खड़ा, विदा देता चित्र, उसकी स्मृति में उनका आखिरी बिम्ब है।

पता नहीं वह कितनी देर और यूँ ही खड़ी रहती पर थक गई। चाय की इच्छा ने जोर मारा। बाहर से गेट के खुलने और फिर बन्द होने की आवाज



आई। वह बाहर आ गई, फिर रसोई-घर की तरफ मुड़ी। गैस पर एक छोटे पतिले में थोड़ी-सी बची हुई चाय थी। भाई-भाभी काम पर निकल चुके थे।

‘देख, तेरी माँ नहीं बैठी है अब, वहाँ पर। भाई पूछता है, यही बहुत है। मेहमान की तरह रहना।’ उसके पति ने चलने से पहले समझा दिया था।

‘क्यों ? मेरे बाप का घर है।’ उसने अधिकार से जवाब दे दिया।

‘अब भाई का है।’ उन्होंने टंडेपन से कह दिया।

‘दीदी, वैसे यह तुम्हारा अपना घर है। पर तुम चार दिनों के लिए आई हो, मेहमानों की तरह रहो। खुशी-खुशी आओ और खुशी-खुशी जाओ।’

जब भाई ने भी यही बात कही और वह भी बिना किसी सन्दर्भ के, तो भीतर कहीं थोड़ी-सी कचोट उठी। परदेश में बसी बेटियाँ और बहनें-मेहमान तो वे हो ही जाती हैं। भूल जाती है वो यह बात।

पिछली बार जब आई थी तो रिया की शादी नहीं हुई थी। पापा नीचे वाले घर में ही रहते थे। उसने ध्यान दिया कि वह जब भी ऊपर होती है, रिया हमेशा नीचे चली जाती है और जब वह नीचे पापा के पास होती, रिया ऊपर चली जाती। और अगर वह भी कहीं उसी वक्त ऊपर पहुँच जाती तो भाभी-भतीजी दोनों अपने कमरे घुस-पुस कर रही होतीं। वह यूँ-ही, बेकार-सी उनके सामने से दो-तीन बार गुजरती। कोई उसे अन्दर आने के लिए

नहीं कहता था।

उसे वहाँ, उस घर में अपना होना इतना फ़ालतू लगता कि वह कमरे में आकर, डायरी में बस एक सवाल लिखती-‘मैं यहाँ क्यों आती हूँ?’

कब से तैयार होकर ड्राइवर के आने का इंतजार कर रही है। भाई आया। ‘रिया के नाना-नानी को एक और गाड़ी की जरूरत थी तो ड्राइवर को मैंने वहाँ भेज दिया है।’ ज़ाहिर था कि दूसरी गाड़ी भाभी काम पर ले गई थीं। तमतमा गई वह, इन्हें किसी के वक्त की परवाह नहीं।

‘अच्छा होता, अगर पहले ही बता दिया होता। मैं टैक्सी ले लूँगी।’

‘यह अमरीका नहीं है, अकेली औरतों का टैक्सी में घूमना ख़तरनाक साबित हो सकता है।’ उसके पैरों में बेडियाँ डालकर वह बाहर निकल गया।

उफ़ान थमा तो उसने माधवी को फ़ोन मिलाया। वह मिल भी गई।

‘चल मुझे थोड़ी शॉपिंग तो करवा दे।’ माधवी खुशी से राजी हो गई।

‘याद है, कटिज एम्पोरियम से हम दोनों ने कितनी सुन्दर साड़ियाँ ली थीं?’

‘अब तो नया खुल चुका है।’

‘मालूम है। हैंडलूम-हाउस चलें?’

‘अब तो वह भी बन्द हो गया है।’

‘तो फिर चाँदनी-चौक चलते हैं।’

‘तू पुरानी जगहों से इतनी चिपकी हुई क्यों है?’ माधवी की आवाज़ में सवाल नहीं खीझ थी।

‘पता नहीं। शायद वह मेरी सुखद स्मृतियों के स्थल हैं।’

‘तुम लोग जो बाहर से आते हो न, पुरानी बातें बहुत करते हो। जहाँ, जिस जगह, जिस समय देश छोड़ कर विदेश में बसते हो, बस उसी समय के ताने-बाने में बन्द हो जाते हो और सोचते हो कि सब कुछ तुम्हारे हिसाब से वहीं रुका, थमा खड़ा होगा।’

उसने माधवी की बात का जवाब जैसे कहीं बहुत गहरे से दिया-‘शायद मैं उसी पुराने-पन, उन्हीं बिछड़े सुखों की तलाश में लौटती हूँ। वह मेरा कम्फ़र्ट-ज़ोन है। इस नए-पन में मेरी पहचान खो जाती है। और मैं अपने को गँवाना नहीं चाहती।’

‘गुम तो तू हो ही चुकी है, दो संस्कृतियों के चक्कर में।’

‘नहीं, मैंने अपने संस्कारों और मूल्यों को नहीं छोड़ा।’ उसने प्रतिवाद किया।

‘वही तीस साल पुराने मूल्य न?’

उसने सहेली के व्यंग्य का जवाब ही नहीं दिया।

‘जाने से पहले एक बार अपना घर तो देख लेने दे।’ उसने आखिर भाई से कह ही दिया।

‘अच्छ !’ उसने अनमना-सा सिर हिला दिया। शाम को ले भी गया। आँगन पार कर वह जल्दी से बाँये कमरे की ओर मुड़ गई। वहाँ से पलंग हट चुका था। एक मेज़, एक कम्प्यूटर, कुछ कागज़, एक फ़ाइल कैबिनेट-शायद भाई ने वहाँ अपना ऑफ़िस बना लिया था। वह ख़ाली-ख़ाली आँखों से सब घूरती रही। ढूँढ़ती रही अपने पिता की याद को, जिसे वह यहाँ छोड़कर गई थी। आदी हो गई थी उन्हें इसी जगह पर लेटा हुआ देखने की। इस ज़मीन के हिस्से पर ज़िन्दगी की लिखावट बुरी तरह से घिच-मिच हो गई थी। अब उसी हिस्से पर पड़ा था-एक मेज़, कुछ फ़ाइलें और उन पर पड़ी धूल। वह बाहर निकल आई। रसोई के साथ लगा उसका अपना कमरा था। उसने धीरे से दरवाज़े पर उँगलियों का दबाव डाला। कमरा अन्दर से बंद था। भाई ने दूसरी ओर से जाकर कमरे में लगे ताले को खोल दिया। खुलने पर अन्दर से धूल की गन्ध आई। वह कमरे के बीचों-बीच आकर खड़ी हो गई। एक अजीब सी झुरझुरी उसके बदन से गुज़र गई। जैसे यह कमरा एक बड़ी सी लिफ़्ट था और इसके अन्दर रहकर अतीत में उतरने का अधिकार सिर्फ़ उसी को था। जैसे किसी योगी को किसी ने बक्से में बंद कर दिया हो और उसे कुछ समय भूमिगत समाधि में बिताना था।

‘तुम जाओ। मैं थोड़ी देर यहाँ अकेले रहना चाहती हूँ।’

बिना प्रतिवाद किए भाई हट गया।

उसने गहरी साँस ली। जैसे ऐसा करने भर से, यादों के कुएँ से ज्यों का त्यों लौटने का साहस आ जाएगा। कमरा अन्दर से बन्द कर लिया। उस जगह पर आकर खड़ी हो गई; जहाँ उसकी पढ़ने की मेज़ थी। जहाँ उसने एम.ए की पढ़ाई की थी। वहाँ कुछ बन्द पेटियाँ पड़ी थीं। यहाँ उसकी चारपाई हुआ करती थी, उसने अन्दाज़ा लगाया। इस अल्मारी में उसके फ़ॉक थे, जो सलवार-कमीज़ों में और फिर साड़ियों में बदल गए। उसके सैंट की खुशबू कपड़ों

में उतर जाती थी और उसी महक का झोंका अल्मारी खोलते ही बाहर आ जाता। अपनी अल्मारी पर भाभी का लगा ताला देखकर एक कातर-सी मुस्कराहट उसके चेहरे पर फैल गई। एक पुराना लोक-गीत कलेजे पर दर्द की लकीर खींच गया।

‘भाभियां मारन जन्धरे नी माँए, मेरा हुन कोई दावा वी नां।’

वह धीरे-धीरे कमरे में एक जगह से दूसरी जगह जाकर खड़ी हो गई। एक-एक क्रम से कितनी यादों, अनुभवों और भावनाओं का सफ़र तय कर लिया। दीवार पर लगी माँ की बड़ी-सी तस्वीर पर दृष्टि रुक गई। वह पास आकर खड़ी हो गई। उसने हाथ बढ़ा कर तस्वीर को छूना चाहा, पहुँचा नहीं।

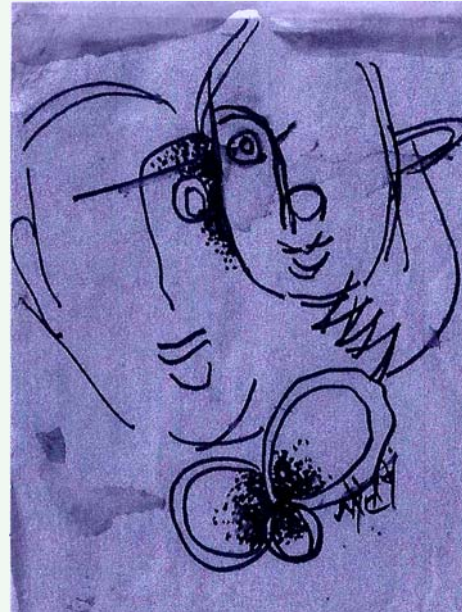
उसकी साँस तेज़-तेज़ चलने लगी। तस्वीर देखते हुए एक बड़ी दुर्दमनीय इच्छा उठी-माँ के गले लगने की। उसने आँखें बन्द कर लीं। होठ काँपे और पता नहीं कब वह फूट-फूट कर रो पड़ी।

‘यह भी कोई मायके आना हुआ। माँ, तेरे घर में मुझे पूछने वाला कोई नहीं।’

‘नी कनकाँ निसरियाँ, धियाँ क्योँ बिसरियाँ माए दूरोँ ते आई सी चल के नी माए। तेरे दर विच रई याँ खलो

भाभियाँ ने पुछया नई सुख-सुण्या हाय, वीरा न दिता ई प्यार

नी कनकाँ लम्बियाँ, धियाँ क्योँ जम्मियाँ नी माए?’



खड़ी न रह सकी, वहीं बक्सों पर बैठ गई। क्रांतिल हमेशा अपने ज़ुर्म के स्थान पर लौटता ज़रूर है। पर उसने तो कोई अपराध नहीं किया। उसका स्रोत है, मूल है यहाँ, इसीलिए लौटती है।

‘पागल, गंगा क्या गंगोत्री से मिलने लौटती है? वह तो सागर की ओर ही बढ़ती है, उसी में समाहित हो जाती है।’ जैसे माँ ही समझा रही थी।

‘बहन मेरी, तुम जीजा जी और बच्चों में मस्त रहा करो। हमारी फ़िक्र मत किया कर, हम मजे में हैं।’ भाई ने भी तो उसे उसकी दिशा बता दी थी।

‘जब पति, बच्चे, काम और वहाँ के सम्बन्धों के साथ, एक नए देश और नई संस्कृति के साथ जूझते हुए पस्त हो जाओ, तो क्या तब भी इच्छा न हो, अपने उसी सुखद अनुभव में फिर से गोता लगाने की? वह अपने से ही सवाल करती है।

‘जिस पानी में तुमने गोता लगाया था, वह तो कब का आगे निकल चुका। तुम एक ही पानी में डुबकी बार-बार नहीं लगा सकते। पानी वही नहीं रहता।’ माधवी के गुरु जी ने कभी कहा था।

वह देखती है, वही अब उसका कमरा नहीं रहा, रिया का भी नहीं रहा। यह जो है, शायद यह भी नहीं रहेगा। हर बार कुछ नया होगा। उसकी आँखें बन्द थीं जैसे ध्यान में हो। दरवाज़े पर खटखटाहट हुई। वह बाहर निकल आई। भाई उसके चेहरे की ओर देखता रह गया। इस सारे समय के दौरान उसने बहन के चेहरे पर कभी इतनी शांति नहीं देखी थी।

सामान गाड़ी में लद चुका था। हँसकर, सबसे गले मिलकर विदाई ली। न कोई आँख भीगी, न किसी ने तड़प कर पूछा-‘अब कब आएगी ? जल्दी आना।’ उसने उम्मीद भी नहीं की थी।

कार एक-तरफा सड़क से होकर आगे बढ़ गई। फिर वापिस घूमकर घर के सामने आ गई। जानती थी कि आज बॉल्कनी के चौखटे में जड़ी, वह लम्बी, दुर्बल आकृति विदा नहीं दे रही होगी। फिर भी बड़ी तीव्र इच्छा उठी-आखिरी बार उधर देखने की।

‘मत देख पीछे मुड़कर, पत्थर हो जाएगी।’ पता नहीं कहाँ से, किसने उसे चेतावनी दी।

वह सिर सीधा किए, गड्डमड्ड होती रेशनियों को देखती रही। गाड़ी आगे की ओर बढ़ गई।

□

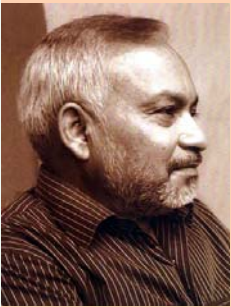
जीवन हमारा क्रीतदास नहीं है (संदर्भ: बहता पानी – अनिल प्रभा कुमार)

सुशील सिद्धार्थ

इस बार अनिल प्रभा कुमार की कहानी 'बहता पानी' पढ़ने और लिखने के लिए है। अनिल की कुछ कहानियाँ पढ़ चुका हूँ। एक तो अभी, जो 'पाखी' पत्रिका के दिसंबर 2014 अंक में छपी है – 'बस पाँच मिनट'। सबसे पहले तो उनको बधाई कि इस रचना में उन्होंने जिजीविषा और सहभागिता को बहुत सलीके के साथ पाठकों के सामने रखा है। एक भिन्न विषय पर लिखी कहानी में भी ऐसी कुछ पंक्तियाँ आ जाती हैं, जो 'बहता पानी' की रचना मानसिकता को संकेतित करती हैं। नायिका हादसे का शिकार है। भावनात्मक सहारा खोज रही है। परदेस में दूर देश से भाई का संदेश आता है, पर उसमें शब्द होते हैं, 'यहाँ क्या करेगी आकर?' और नायिका 'सब ठीक हो जाएगा। तेरा घर है, आ जा।' कोई नहीं कहता।—इस दुःख से भरी है। इसे कुछ बौद्धिक (या चतुर बौद्धिकता के दुनियादार अभिनेता) व्यर्थ की भावुकता कह कर आनंदित हो सकते हैं। मेरे लिए यह एक सजग जीवन का लक्षण है। अतीत या स्मृति के साथ आप किस तरह जीते हैं, यह विचारणीय है; मगर अतीत विहीन या स्मृति-भ्रष्ट जीवन की कल्पना कठिन है। मनुष्येतर प्रकृति में भी स्मृतियाँ अपनी तरह से सुरक्षित रहती हैं।

'बहता पानी' अनिल प्रभा कुमार की स्मृतियों से संचालित कहानी है। कहानी में कथा अल्प है। विदेश में रहने वाली कथा नायिका जब 'देश' आती है तो माँ पिता के बीच मिलने वाली आत्मीयता गायब मिलती है। मायका और पीहर दोनों अपने मूल अर्थ में विलुप्त। वह कुछ दिन स्मृतियों के साथ रहकर और भाई के परिवार का 'ठंडा' व्यवहार देखकर वापस चली जाती है। कथा इतनी ही है। कम घटनाओं वाली कहानी को लेखिका ने नायिका के अंतःसंघर्ष से विकसित किया है। कहानी कई बार फ्लैश बैक में जाती है और उबरती (भी) है।

हिन्दी में इस थीम पर कई कहानियाँ लिखी गई हैं। एक तो बहुचर्चित है। वरिष्ठ कथाकार उषाकिरण खान की कहानी 'दूब-धान'। शहर से गाँव आई केतकी को 'अपने गाँव' में आए कुछ बदलाव रास नहीं आते। केतकी किसी पुराने समय में ठहरी हो, ऐसा नहीं। दरअसल ओढ़ी हुई आधुनिकता के फेर में आत्मीयता के छोटे-छोटे संदर्भों का बिसरते जाना केतकी को दुखता है। वह गाँव से लौट रही है तभी 'सबुजनी' से मिलनी होती है। सबुजनी के 'गोरे झुर्दीदार चेहरे पर हर्ष की लहर दौड़ गई।' वह आवाज़ देती है '..... कहाँ गई सुलेमान की कनिया जरा सोना-सिंदूर ले आ केतकी की



सम्पर्क : किताबघर प्रकाशन, ४८५५-५६/२४,
अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली ११०००२
मोबाइल: ०९८६८०७६१८२,
ईमेल : sushilsiddharth@gmail.com

माँग भर। एक चुटकी धान-दूब ले आ, खोइछा भर दे।' बाद में 'मेहमान का सलामी' के लिए 'दो रुपए का लाल मुड़ा-तुड़ा नोट' केतकी को थमा देती है। केतकी के मन का बाँध जब टूटता है तब रोती केतकी से सबुजनी कहती है 'रो ले, बेटी, रो ले, मन में कुछ न रखना, कहा सुना छिमा करना, गाँव जवार को असीसती जाना।' 'केतकी' खूँट में बँधे चुटकी भर दूब-धान को मुट्टियों में भींचे पगडंडी पार करने लगी। 'यह कहानी है उषा किरण खान की। बहुचर्चित कहानी। पता नहीं कि अनिल प्रभा कुमार ने यह कहानी पढ़ी कि नहीं। न पढ़ी हो तो पढ़ना चाहिए। एक रचनाकार को यह जानने के लिए भी पढ़ना चाहिए कि जीवन के एक ही पन्ने पर किसने क्या-क्या देखा और लिखा। जीवन इतना अप्रत्याशित है कि एक का अनुभव विशिष्ट हो सकता है, संपूर्ण नहीं। विशिष्टता के साधारणीकरण की समस्या से साहित्य बड़ा या छोटा (या सामान्य....महत्त्वपूर्ण) बनता है।

'बहता पानी' पढ़ते हुए एक जगह आधुनिक अवधी के महाकवि आचार्य विश्वनाथ पाठक की याद आ जाती है। 'सर्वमंगला' महाकाव्य में लिखते हैं-

'संसृति नदी निरंतर भासै'
ध्रुव न कहैं मुलु ग्यानी।
अगिले छिन में हाथ न आवै
पिछले छिन कै पानी।।'

नायिका की सहेली के गुरु जी भी ऐसा ही कुछ कहते हैं 'जिस पानी में तुमने गोता लगाया था, वह तो कब का आगे निकल चुका। तुम एक ही पानी में डुबकी बार-बार नहीं लगा सकते। पानी वही नहीं रहता।' प्रवाहित पानी कभी 'एक ही पानी' नहीं रहता। कुएँ या ताल तलैया की बात और है। इसी बात को अपनी तरह से कबीर ने व्यक्त किया था 'संस्कीरत है कूप जल भाखा बहता नीर।'

पिता की मृत्यु के बाद नायिका (नायिका बार-बार इसलिए कहना पड़ा रहा है कि लेखिका ने नामकरण नहीं किया। यह बेनाम चरित्र मन को छूता है, नाम होता तो ज़्यादा उद्धरणीय होता) पहली बार विदेश (अमेरिका) से भारत आई है। पिता नहीं 'भाई के घर'। क्यों आई है - 'शायद मैं उसी पुरानेपन, उन्हीं बिछुड़े सुखों की तलाश में लौटती हूँ। वह मेरी कम्फर्ट जोन है। इस नएपन



'बहता पानी' अनिल प्रभा कुमार की स्मृतियों से संचालित कहानी है। कहानी में कथा अल्प है। विदेश में रहने वाली कथा नयिका जब 'देश' आती है तो माँ पिता के बीच मिलने वाली आत्मीयता गायब मिलती है।

में मेरी पहचान खो जाती है और मैं अपने को गँवाना नहीं चाहती।' या एक जगह और क्यों का उत्तर है 'जब पति, बच्चे, काम और वहाँ के सम्बंधों के साथ एक नए देश और नई संस्कृति के साथ जूझते हुए पस्त हो जाओ तो क्या तब भी इच्छा न हो अपने उसी सुखद अनुभव में फिर से गोता लगाने की?'

बहुत सलीके के साथ लेखिका ने 'वह' के 'कम्फर्ट जोन' और 'सुखद अनुभव' को खोला है। इस बहाने प्रतिपक्ष के बहुत सारे सवाल आ खड़े होते हैं। आखिर कहानी के भीतर से ही तो ये सूत्र निकलेंगे। 'वह' का देश अगर 'माता-पिता' तक ही सीमित न हो तो वह इस देश में इसी शहर में कोई ठौर ले सकती है। जिन प्रवासियों के पास घर की स्मृति नहीं होती वे मिट्टी, नदी, प्रकृति, पुरातत्व, संगीत आदि से मिलकर चले जाते हैं। सोचिए कि क्या यह देश बाहर गए लोगों के कम्फर्ट के लिए उसी जगह ठहरा रहे, जहाँ वह बरसों पहले था। शायद इसी कॉलम में 'आषाढ़ का एक दिन' के तीसरे अंक का क्लाइमेक्स याद दिला चुका हूँ। मल्लिका ने धारासार वर्षा में भीगे कालिदास से यही तो कहा था कि समय किसी की देहरी पर रुका नहीं रहता। वह समान रूप से हर जगह

बीतता है। अलबत्ता बीतने का अनुभव और प्रभाव जुदा होता है/ हो सकता है, जिस पर बात हो सकती है। वन जाते समय राम सीता के प्रति अयोध्यावासियों के जो भाव थे, वे चौदह वर्ष बाद बदले थे। सीता के प्रति उत्पन्न प्रवाद इसका उदाहरण है।

इस बात की प्रशंसा करनी होगी कि अनिल प्रभा कुमार ने कहानी में किसी पात्र को जानबूझकर काला रंग नहीं दिया। बस एक जगह को छोड़कर। इससे पहले 'वह' आई थी तो भतीजी रिया और भाभी उससे बचते थे, उसने ध्यान दिया कि वह जब भी ऊपर होती है, रिया हमेशा नीचे चली जाती है और जब वह नीचे होती रिया ऊपर जाती। और अगर वह भी कहीं उसी वक्त ऊपर पहुँच जाती तो भाभी भतीजी दोनों अपने कमरे में घुसपुस कर रही होतीं। वह यूँ ही बेकार सी उनके सामने से दो तीन बार गुज़रती। कोई उसे अंदर आने के लिए नहीं कहता था। यह अकारण नहीं हो सकता। प्रेमचंद समेत कई कथा महारथियों की बात मानें तो इसका ठोस कारण होगा। लेखिका यदि कहानी में कारणों की ओर मुँह करके एक पैराग्राफ लिख देती तो इन भाभी भतीजी की क्लिंशे छवि को समझने में मदद मिलती। क्योंकि ऐसे आचरण के बाद आहत 'वह' पेशान होती उसे वहाँ उस घर में अपना होना इतना फालतू लगता कि वह कमरे में आकर, डायरी में बस एक सवाल लिखती - 'मैं यहाँ क्यों आती हूँ?'

'क्यों आती हूँ' का जवाब 'वह' ने मित्र माधवी को दिया है और इसके जवाब में माधवी ने सही कहा था कि विदेश जाकर बसने वाले अक्सर पुरानी यादों में क़ैद रहते हैं। आने और न आने अपने होने और फालतू लगने के बीच 'वह' अपने मूल्यों और संस्कारों की दुहाई भी देती है। मूल्यों और संस्कारों की अन्तर्निहित गतिशीलता पर उसका ध्यान शायद नहीं जाता। कई बार ऐसी मानसिकता से अतिरिक्त भावुकता के उपनिवेश पैदा होते हैं।

लेखिका ने स्मृतियों के सम्मोहन से मुक्ति का एक तरीका भी निकाला है। विदेश वापस जाने से पहले वह 'अपना घर' देखने का आग्रह भाई से करती है। रसोई से सटे 'अपने कमरे' में आती है 'जैसे यह कमरा एक बड़ी सी लिपट था और इसके अंदर अतीत में उतरने का अधिकार सिर्फ उसी को था। जैसे किसी योगी को किसी ने बक्से

में बंद कर दिया हो और उसे कुछ समय भूमि - गत समाधि में बिताना था।' वह भाई को भेजकर कुछ समय उस कमरे में तनहा रहती है। सब महसूस करती है। पंजाबी लोकगीत याद आता है जिसमें भाभी भैया की उपेक्षा उभरी है। 'धियाँ क्यों जम्मियाँ नी माएँ' की टेक और माँ का चित्र। वह फूट-फूट कर रो पड़ती है। शायद माँ के बहाने अपने से या अपनी जैसी बहुत सारी स्त्रियों से कहती है 'यह भी कोई मायके आना हुआ। माँ, तेरे घर में मुझे कोई पूछने वाला नहीं।' और यह कसक जायज़ है। इसका जवाब तो समकालीन रिश्ते ही देंगे।

जाते समय कोई आँख भीगी नहीं। किसी ने तड़प कर पूछा भी नहीं कि अब कब आएगी। यह कुछ ज़्यादा है। और हो सकता है विशिष्ट अनुभव हो। हो सकता है मायके के लोग औपारिकताओं से आगे निकल आए हों। यहाँ 'वह' एक पुरानी कहानी याद करती है। इसमें दादी का वाक्य है 'पीछे मुड़कर नहीं देखना। तुम्हें छलने के लिए पीछे से बहुत आवाज़ें आएँगी, पर तुम बस पीछे नहीं देखना नहीं तो पत्थर हो जाओगे।' और वह

वापस जाते समय पीछे नहीं देखती। शायद सारा अतीत यही झटक देती है। यही उसकी मुक्ति है। 'बहता पानी' जो बहाकर ले गया उससे उबर आने की युक्ति है। एक तरह से यह कहानी का भावुक तार्किक अंत है, जो पाठक को अच्छा लगता है।

लेकिन मैं सोचने लगता हूँ कि हो सकता है दादी ने यह कहानी भाई को भी सुनाई हो। भाई भी पीछे मुड़कर न देखना चाहता हो। जीवन और समय का प्रभाव 'वह' पर होगा तो 'भाई' पर भी होगा। हो सकता है इसका असर भाभी और भतीजी पर सबसे पहले हो गया हो। होता यह है कि हम आधुनिक और व्यावहारिक होना चाहते हैं। दूसरा होता है तो यादों का खेत नीलाम होने लगता है।

दसअसल हर कहानी की तरह दादी की कहानी की भी एक सीमा है। हम किसी सफल आदमी का वर्णन करते समय एक बात अक्सर दुहराते हैं कि 'और उसके बाद उसने पीछे मुड़कर नहीं देखा।' मैं पूछता हूँ कि भाई जब आप आगे बढ़ रहे थे, तब ये पीछे वाले आपके पक्ष में कुछ तो कर रहे होंगे। जब आप चमक गए तो पीछे के अँधेरों में

झाँक कर देखने से डर गए। पीछे मुड़कर देखना सार्थक आदमी की विशेषता है, सफल की बात मैं नहीं करता। राक्षसों की बात अलग, जो कहानियों में भयानक बताए जाते हैं, पीछे मुड़कर देखने से आगे के लिए शिक्षा ही मिलती है। इस बिन्दु पर हम श्रीलाल शुक्ल का लघु उपन्यास 'राग विराग' पढ़ सकते हैं। इसमें अतीत, स्मृति, भावुकता और यथार्थ पर बढ़िया बहस छिड़ी है।

संयोगवश, यहाँ अनिल प्रभा कुमार की ही कहानी 'किसालिए' याद आ रही है, जिसमें एक बुजुर्ग एकांत और जड़ता से बाहर आता है। ज़्यादा खूबसूरती से। 'बहता पानी' कहानी अच्छी भाषा में लिखी गई है। हालाँकि अब यह भाषा हिन्दी कहानी के लिए अतीत है। विधाएँ भी पीछे मुड़कर शायद नहीं देखतीं। अनिल प्रभा कुमार की एक रचना पद्धति है, जिसे अब बदल देना चाहिए। पता नहीं वह चाहेंगी या नहीं। यह कहानी पढ़कर मुझे भारतीय परिवारों की मानिसकता जानने का एक और अवसर मिला। पठनीय कहानी के लिए लेखिका को धन्यवाद।



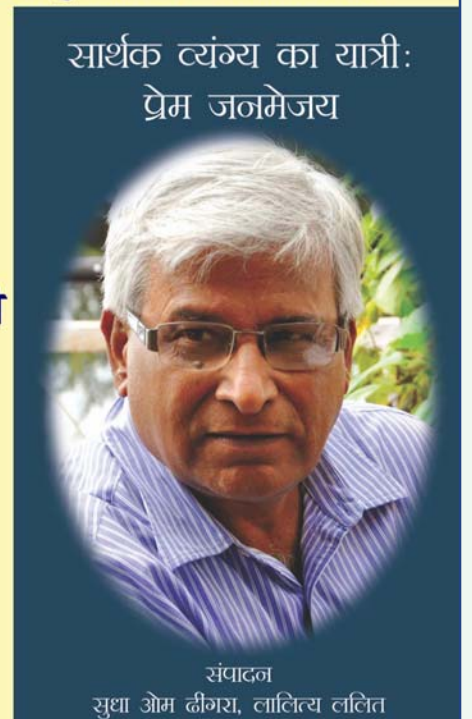
हिन्दी चेतना तथा शिवना प्रकाशन का साझा अभिनव प्रयास 'हिन्दी चेतना ग्रंथमाला'

पंकज सुबीर के अतिथि सम्पादन में प्रकाशित विशेषांक-2014 'नई सदी का कथा समय' तथा सुधा ओम ढींगरा एवं लालित्य ललित के संपादन में प्रकाशित 'प्रेम जनमेजय' विशेषांक-2011 अब पुस्तक रूप में भी उपलब्ध।



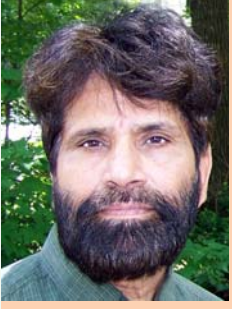
हिन्दी
चेतना
ग्रंथमाला

प्रमुख संपादक : श्याम त्रिपाठी
संपादक : सुधा ओम ढींगरा



सार्थक व्यंग्य का यात्री:
प्रेम जनमेजय

संपादन
सुधा ओम ढींगरा, लालित्य ललित



डॉ. अफ़रोज़ ताज, एशियन स्टडीज़ विभाग, यूनिवर्सिटी आफ़ नॉर्थ कैरोलाइना, चैपल हिल, यू एस ए में प्रोफ़ेसर हैं। पीएच.डी. का विषय है-हिन्दी-उर्दू के काव्यात्मक रंगमंच का आलोचनात्मक अध्ययन (अंग्रेज़ी में), और यू एन सी स्टडी अब्रौड इन इन्डिया, एशियन स्टडीज़ विभाग में दक्षिणी एशिया भाग, गीत बाज़ार रेडियो, ताज कनेक्शन टीवी शो, बोर्ड आफ़ ट्रस्टीज़: उर्दू मजलिस, इन सबके संचालक हैं। डॉ.अफ़रोज़ ताज की प्रकाशित पुस्तकें हैं-इन्द्र सभा और उत्तरी भारत के रंगमंच का पुनर्जन्म (अंग्रेज़ी), हिन्दी के द्वारा उर्दू-देवनागरी की सहायता से नस्तालीक़ (अंग्रेज़ी)। ए डोर इन टू हिन्दी: सायबर स्पेस के द्वारा हिन्दी भाषा का कोर्स-यू.एस. शिक्षा विभाग, दरवाज़ा: सायबर स्पेस के द्वारा उर्दू भाषा का कोर्स-यू.एस.शिक्षा विभाग, तनहाइयाँ, अनकही और अहसास, पाकिस्तानी ड्रामों पर अध्ययन और पारसी थियेटर की किताब पर काम चल रहा है। कई सम्मानों से सम्मानित, जिनमें प्रमुख हैं-- कालिज आफ़ ह्यूमैनिटीज़ ऐण्ड सोशल साइन्सज़ आउटस्टैंडिंग टीचर अवॉर्ड, एन .सी.एस .यू. आउटस्टैंडिंग टीचर अवॉर्ड, कालिज आफ़ ह्यूमैनिटीज़ ऐण्ड सोशल साइन्सज़ लेखक अवॉर्ड, बैस्ट एक्टर अवॉर्ड, उत्तर प्रदेश, भारत, बैस्ट पोइंट अवॉर्ड, नग़मा-ए अलीगढ़ पर, ए.एम.यू. के द्वारा।
ईमेल: taj@unc.edu,
फ़ोन: ९१९९-८५१-१११९
संपर्क: Campus Box 3267 201 New West, University of North Carolina, Chapel Hill, 27599

अच्छी शिक्षा सदैव राजनीति से अलग रहती है- डॉ. अफ़रोज़ ताज

(बातचीत-डॉ. सुधा ओम ढींगरा)

(नवम्बर में मैं भारत गई थी। वहाँ बहुत से लेखक मित्रों से मिलना हुआ। कई नए मित्र बने। विदेशों में हिन्दी के प्रचार-प्रसार और अध्यापन को लेकर नए मित्रों में मैंने कई तरह की जिज्ञासाएँ पाईं। विदेश की धरती पर हिन्दी कैसे पढ़ाई जाती है और कैसे पढ़ी जाती है; जहाँ अंग्रेज़ी ही चहुँ ओर है, वहाँ विद्यार्थी हिन्दी क्यों पढ़ना चाहते हैं! जबकि भारत में हर कोई अंग्रेज़ी की तरफ भाग रहा है आदि-आदि। ये जिज्ञासाएँ स्वाभाविक थीं। मित्रों के प्रश्नों के उत्तर देकर मैंने काफी हद तक उन्हें संतुष्ट किया। पर यहाँ आने के बाद सोचा कि ऐसी ही जिज्ञासाएँ तो पाठकों की भी हो सकती हैं। तभी मैंने दक्षिण एशियन भाषाओं, साहित्य और संस्कृति एवं हिन्दी-उर्दू विभाग, यू एन सी चैपल हिल विश्वविद्यालय (जो अमेरिका के नॉर्थ कैरोलाइना स्टेट में है) के एसोसिएट प्रोफ़ेसर डॉ. अफ़रोज़ ताज का साक्षात्कार लिया और उनसे शिक्षण, ग़ज़ल और भाषा सम्बन्धी बातचीत की। पाठकों की जानकारी के लिए बता दूँ, यहाँ हिन्दी-उर्दू भाषाएँ साथ-साथ पढ़ाई जाती हैं। प्रस्तुत है वह बातचीत)

प्रश्न: अफ़रोज़ ताज जी आप यू एन सी चैपल हिल विश्वविद्यालय में हिन्दी-उर्दू पढ़ाते हैं। क्या दो देशों के अध्यापन तकनीक में अन्तर है? यह प्रश्न इसलिए किया गया है कि अक्सर लोगों के मन में जिज्ञासा होती है कि विदेश की धरती पर विद्यार्थी हिन्दी कैसे पढ़ते हैं? और हमें किन-किन चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

उत्तर: भारत के हिन्दी-उर्दू अध्यापन और अमरीका के हिन्दी-उर्दू अध्यापन में वही फ़र्क है, जो एक सेब और एक संतरे में है। जिस तरह सेब और संतरे की आपस में तुलना नहीं की जा सकती, इसी तरह यह भी है, क्योंकि अमरीका में हिन्दी-उर्दू पढ़ने का उद्देश्य दूसरा है और भारत में दूसरा। सुधा जी, आप जानती ही हैं कि भारत में बच्चों को बचपन से ही हिन्दी या उर्दू लिपि सिखाई जाती है और भाषा सिखाने का कोई मसला नहीं; क्योंकि वे तो स्वयं ही सीख जाते हैं। तो भारत में केवल लिपि सिखाना पड़ती है, जो वे छोटपन से ही सीख लेते हैं और आगे चलकर साहित्य सीखते हैं। और यह भाषा व लिपि उनकी संस्कृति तथा संस्कार की आवश्यकता है। जब कि अमरीका में ऐसा सब कुछ नहीं है, अक्ल तो ज्यादातर यह भाषा छात्रों को केवल यूनीवर्सिटी स्तर पर आ जाने के बाद पढ़ाई जाती है। जब तक छात्र

आमतौर पर अठारह से पच्चीस साल की आयु का होता है, तो पढ़ाने का ढंग भी छोटे-छोटे बच्चों के पढ़ाने के ढंग से बिल्कुल भिन्न होता है। दूसरी बात यह है कि यहाँ केवल लिपि ही नहीं बल्कि भाषा भी सिखानी होती है। उनको बोलना सिखाने के लिये व्याकरण से भी परिचित कराना आवश्यक है।

अमरीका में हर बड़ी यूनिवर्सिटी में विदेशी भाषाएँ पढ़ाई जाती हैं और हर-अण्डरग्रेड-को कोई एक भाषा जानना अनिवार्य है। इस के अंतर्गत जर्मन, जापानी, स्पैनिश, फ़ारसी, अरबी, फ़्रांसिसी, हिन्दी-उर्दू, कोरियन, तथा रूसी इत्यादि आधुनिक भाषाएँ अमरीका के ज़्यादातर विश्वविद्यालयों में सीखने के लिये उपलब्ध है। हिन्दी-उर्दू भाषा इण्डो-यूरोपियन भाषाओं में आती है और जैसे-जैसे धीरे-धीरे इस का महत्त्व विश्व के सामने आता जा रहा है, वैसे-वैसे इस भाषा के छात्र भी अमरीका की कक्षाओं में बढ़ते जा रहे हैं। उनको अब ज्ञात हो चुका है कि हिन्दी-उर्दू दुनिया में सब से अधिक बोली जाने वाली भाषाओं में नंबर दो है अर्थात् मैण्डरिन चाइनीज़ के बाद हिन्दी-उर्दू का नंबर आता है।

हाँ मगर दूसरी भाषाएँ बहुत ज़माने से पढ़ाई जा रही हैं। मगर हिन्दी-उर्दू ने सबसे पहले इण्टरनेट की टेक्नोलॉजी को अपनाया, क्योंकि इसके लिए मुझे नव्वे के दशक में अमरीका के शिक्षा विभाग से एक बहुत बड़ी ग्राण्ट मिली; जिस की वजह से हिन्दी-उर्दू शिक्षण तकनीक के हिसाब से बहुत आगे बढ़ चुका है और इसकी पैडागाजी (पढ़ाने का तरीका) भी दूसरी भाषाओं से कम नहीं। बेशक बच्चों को बोलना सिखाने से कठिन बड़ों को बोलना सिखाना है। इन चुनौतियों का सामना करने के लिए बड़े-बड़े हिन्दी-उर्दू पाठ्यक्रम इण्टरनेट पर आ चुके हैं और भी आगे काम चल रहा है।

प्रश्न: निस्संदेह आप हिन्दी-उर्दू को सरल करके पढ़ाते होंगे; क्योंकि यहाँ दोनों भाषाओं को परम्परागत तरीके से पढ़ाने में कठिनाई आती है, यहाँ बच्चे हिन्दी-उर्दू को विदेशी भाषा के रूप में पढ़ते हैं।

उत्तर: जी हाँ डॉ. सुधा ओम ढींगरा जी, आपके सवाल के भीतर का जवाब बिल्कुल सही है। मैं हिन्दी-उर्दू को सरल करके पढ़ाता हूँ, क्योंकि यदि मैं उसे सरल न करूँ, तो मेरे छात्र जब भारत या

पाकिस्तान जाएँगे, तो वे गलियों-कूचों में, फ़िल्मों और घरों में बोली जाने वाली भाषा को आसानी से नहीं समझ पाएँगे। यह भाषा जिन्दा भाषा है। दूसरी पुरानी भाषाओं की तरह निष्प्राण नहीं है या जमकर एक जगह नहीं रह गई है। यह भाषा ताज़ा नदी की तरह छलछला कर बह रही है। दिन दूनी रात चौगुनी बदल रही है, उसका ढंग बदल रहा है, उच्चारण बदल रहा है, शब्दावली बदल रही है और आसान से आसानतर होती जा रही है। अगर हम उसे पुरानी शब्दावली की ओर खींचें तो वह सिकुड़ती नजर आती है। उसे अपने प्रवाह में आज़ाद छोड़ना होगा वरना उसकी ताज़गी पर प्रभाव पड़ेगा।

यदि हम उर्दू से अरबी और फ़ारसी के अनावश्यक शब्द और हिन्दी से संस्कृत के अनावश्यक शब्द निकाल दें तो वह एक भाषा बन जाती है, एक प्यारा लहकता हुआ संगम बन जाता है; जोकि हमारी गंगा-जमनी संस्कृति की बहतरीन मिसाल है और जोकि लोकप्रिय कल्चर की और हमारे मीडिया की भाषा है।

पिछले दिनों मेरा हिन्दी का एक छात्र पाकिस्तान गया। उसकी बड़ी तारीफ़ हुई कि तुम बहुत अच्छी उर्दू बोलते हो। कुछ रोज़ बाद वह भारत गया तो वहाँ भी लोगों ने उसकी तारीफ़ की कि तुम बहुत अच्छी हिन्दी बोलते हो। उसका ई-मेल आया कि, 'प्रोफ़ेसर ताज़, आपने मुझे कौनसी भाषा सिखाई, जिसकी तारीफ़ दोनों तरफ़ से मिली; जबकि मैं एक ही भाषा बोल रहा था।'

सुधा जी, आपने सुना होगा कि आजकल भारत में एक नया टीवी चैनल खुला है जिसका नाम है जी जिन्दगी-जोड़े दो दिलों को। इस चैनल पर केवल पाकिस्तान के नाटक या फ़िल्में दिखाई जाती हैं। आजकल भारत में जगह-जगह, घर-घर इसकी चर्चा है और यह भी आप जानती हैं कि पाकिस्तान में भारतीय फ़िल्में कितनी लोकप्रिय हैं। अगर हिन्दी-उर्दू दो अलग-अलग भाषाएँ होतीं, तो क्या ऐसा होता?

मैं हिन्दी-उर्दू को दो भाषाएँ न कह कर एक ही भाषा कहूँगा। अलग-अलग लिपियों में लिखने से ये दोनों भाषाएँ अलग-अलग नहीं हो सकतीं। आप भी जानती हैं कि भाषा की रीढ़ की हड्डी उसकी व्याकरण होती है, लिपि नहीं। तो यहाँ तो एक ही व्याकरण है। लिपि से यदि भाषाएँ बदल जाएँ तो अगर हम रोमन लिपि में हिन्दी लिखें, या

तुर्की या भाषा इण्डोनीशिया लिखें तो क्या ये भाषाएँ हिन्दी, तुर्की, या भाषा इण्डोनीशिया न रहेंगी? क्या ये अंग्रेज़ी बन जाएँगी? अब रहा सवाल शब्दावली का। शब्द तो एक भाषा से दूसरी भाषा में आते-जाते रहते हैं। इस से लैंग्वेज में कोई चेंज नहीं आता।

जैसा आपने कहा यहाँ छात्र हिन्दी-उर्दू को विदेशी भाषा के रूप में पढ़ते हैं तो यह सच है, उनको दूर से क्या दिल्ली क्या लाहौर सब एक से लगते हैं। इसीलिये अमरीका के शिक्षण सिस्टम में हिन्दी-उर्दू को एक बना कर पेश किया जाता है। तभी दोनों शब्दों के बीच 'डैश' (-) लगाया जाता है, ऑब्लीक (या स्लैश) नहीं। मैं कहने की इजाज़त चाहता हूँ कि अच्छी शिक्षा सदैव राजनीति से अलग रहती है।

प्रश्न: अफ़रोज़ जी, अमेरिका में हिन्दी-उर्दू की शिक्षा का भविष्य क्या है?

उत्तर: अमरीका में हिन्दी-उर्दू की शिक्षा का भविष्य वही है जो दूसरी विदेशी भाषाओं का है। यानी कि उनका सीखना अंडरग्रेड के लिये अनिवार्य है। अब छात्र पर निर्भर करता है कि वह कौन सी भाषा सीखने को चुनता है। हाँ मगर मैं यह ज़रूर कहूँगा कि दक्षिणी एशिया के दूसरी, तीसरी पीढ़ी के छात्रों की संख्या अब धीरे-धीरे बढ़ती जा रही है और मेरी आशा है कि वे लोग अपने संस्कार और भाषा को महत्त्व देंगे। जैसा मैं देख सकता हूँ कि आज कल दक्षिणी एशिया के छात्र हिन्दी-उर्दू में काफ़ी नज़र आ रहे हैं और चौथे साल तक के हिन्दी-उर्दू के कोर्सेज़ लेते हैं, कबीर, ग़ालिब, मीरा, मीर, फ़ैज़, और बच्चन को पढ़ते हैं तथा सराहते हैं। उन में से अधिकतर वे हैं; जिन्होंने भारत या पाकिस्तान देखा तक नहीं हैं।

अमरीका में इस भाषा का भविष्य साफ़ दिखता है; परंतु अफ़सोस की बात यह है कि भारत-पाकिस्तान में लोग अंग्रेज़ी की तरफ़ दौड़ रहे हैं। उन्हें हिन्दी-उर्दू में कोई भविष्य नज़र नहीं आ रहा, उन्हें अपने बच्चों की हिन्दी-उर्दू पर नहीं, अंग्रेज़ी पर गर्व है। अंग्रेज़ी फ़िल्मों के सिनेमा हाल हिन्दी फ़िल्मों के मुकाबले भरते जा रहे हैं। वहाँ पश्चिमता को आधुनिकता समझा जा रहा है, जिससे हिन्दी-उर्दू को चोट पहुँच रही है। अंग्रेज़ी जानना शिक्षित होने का प्रतीक माना जा रहा है। तो आगे चलकर क्या गलियों, कूचों, फ़िल्मों की गंगा-जमनी भाषा

पर असर नहीं पड़ेगा; जिसका जिक्र मैं पहले कर चुका हूँ।

भारत-पाकिस्तान में सैल फ़ोन पर एस एम एस या टैक्स्ट की भाषा, होर्डिंग या इशतहारों की भाषा, कम्प्यूटर की भाषा आदि हिन्दी-उर्दू की चॉइस होते हुए भी अंग्रेज़ी में होती है। और हाँ, यदि कहीं हिन्दी-उर्दू में कुछ लिखा पाया भी जाता है तो उनकी स्पैलिंग में अच्छी ख़ासी त्रुटियाँ पाई जाती हैं। जिस से स्पष्ट है कि यह लिपि ध्यान से सीखी या सिखाई नहीं जा रही है।

सुधा जी, आज के युग में आप जैसे भाषा मालियों की बहुत ज़रूरत है। हाँ लेकिन मैं समझता हूँ, थोड़ा और सरल होकर ही जनता के दिलों में उतरना और आसान होगा। दिल को जीतने के लिये दिल में उतरना पड़ता है और दिल में उतरने के लिये सीधा रास्ता चाहिए, चक्रव्यूह नहीं। उच्चश्रेणी की शैली से उच्चश्रेणी के पाठक ही लाभ उठा सकेंगे, जो नीचे दबे हैं, वे नहीं। पेड़ की जड़ें मजबूत करना भी उतना ही आवश्यक है; जितना उसके फूल, पत्तियों और फलों पर ध्यान देना।

प्रश्न: कौन से ऐसे तरीके अपनाने चाहिए कि युवा पीढ़ी इन भाषाओं के प्रति आकर्षित हों ?

उत्तर: सुधा जी, चूँकि मैं यू एन सी चैपल हिल का प्रोफ़ेसर हूँ तो उसका जवाब मैं यू एन सी के अनुभव से ही दे सकता हूँ कि हम सब ने मिलकर यहाँ हिन्दी-उर्दू का एक वातावरण बनाने की कोशिश की है, जिससे कैम्पस की नई पीढ़ी आकर्षित होती नज़र आ रही है। दक्षिणी एशिया के मंच कार्यक्रम, संगीत कार्यक्रम, फ़िल्म सिरीज इत्यादि पर भी ज़ोर दिया जा रहा है। पहले हिन्दी-उर्दू पाठ्यक्रम के अलावा दक्षिणी एशिया के अन्य पाठ्यक्रम बड़े पारम्परिक और पुराने ढंग के होते थे। हमने थोड़ा समय लगाकर समय की आवश्यकतानुसार कुछ और कोर्सज़ परिचित किये जैसे बालीवुड सिनेमा, मीडिया मसाला (प्रथमवर्ष सेमिनार), महाभारत और रामायण के आधुनिक पाठ्यक्रम, दक्षिणी एशियाई फ़ूड कल्चर, भारतीय संगीत, सूफ़ी-भक्ति काव्य, उपन्यास और फ़िल्म, ग़ज़ल सेमिनार, इत्यादि। इनसे काफ़ी असर पड़ा और नई पीढ़ी के छात्र इन कक्षाओं के द्वारा हमारी भाषा की ओर भी आकर्षित हुए हैं। लेकिन अभी बहुत काम चल रहा है और अभी और आगे जाना

है। आठ-नौ साल पहले केवल हिन्दी-उर्दू माइनर होता था। अब दक्षिणी एशियाई शिक्षण में मेजर भी शुरू हो चुका है और अब तो दक्षिणी एशिया में एम ए करने का आवेदन पत्र डाला जा चुका है। इस से युवा पीढ़ी अपनी भाषा के प्रति और भी आकर्षित होगी। अपनी भाषा के प्रति आकर्षित होने की ज़िम्मेदारी घर से ही शुरू होती है, जहाँ बच्चे को अपनी भाषा, अपनी संस्कृति और संस्कार का वातावरण इस तरह पेश किया जाता है कि बच्चे के सीने की गीली मिट्टी में कोमल अंकुर खुद ब खुद फूटता है।

प्रश्न: अफ़रोज़ जी, शिक्षण से हट कर अब प्रश्न पूछूँगी। मैं जानती हूँ आप ग़ज़ल लिखते हैं। ग़ज़ल लेखन कब शुरू हुआ ?

उत्तर: बेशक आपका कहना सही है कि आज कल अधिकतर मैं ग़ज़लें लिखता हूँ, लेकिन शुरू से ऐसा नहीं था। मैंने अपनी शायरी की शुरुआत गीतों से की थी। आठवीं, नववीं कक्षा से ही मैंने गीत लिखने आरम्भ किये। उनकी स्वयं धुनें बनाता था और मेज़ या कुर्सी बजाकर खुद ही गाता था। धीरे-धीरे लोगों ने पसंद करना शुरू किया और फिर मैं स्कूल में संगीत के साथ अपनी कविताएँ या गीत गाने लगा और दूसरे स्कूलों में भी बुलाया जाने लगा। मैंने बारह पंद्रह साल की आयु में जो गीत लिखे, आज भी मेरी जुबान पर चढ़े हैं। और मेरे बचपन के दोस्तों की जुबानों पर भी। मेरा गीत जो मैंने बचपन के शुरू के हिस्से में लिखा था आज भी लोग याद करते हैं: 'लहराती आ जाना'। इसके बाद मैंने कुछ और गीत लिखना शुरू किये जो सामाजिक सुधार या सामाजिक त्रुटियों की ओर इशारा करते हैं जैसे, 'रहीम और रामा जब साथी बने, डरे उनसे बादल घने से घने,' या 'आगे बढ़ो साथी, इन बातों में क्या है,' या 'उछालो न ऐसे, हथेली के पैसे'।

अस्ल में मैं गीतों, भजनों, दोहों, माहियों का कवि था। उदाहरण के तौर पर मेरा एक दोहा भी सुनिये-

संगत अपने यार की, संकट में तू जाँच
जल भागे बन भाप जो, दूध को पहुँचे आँच
एक और दोहा सुनाता हूँ--

जो भी जितना रोये है, उतना ही मुस्काए
पौधा ही न सींचिए, फूल कहाँ से आए
सुधा जी, ग़ज़लें तो मैंने अभी लिखना शुरू की

हैं। तिरानवे या चौरानवे से पहले याद नहीं, शायद कुछ लिखी हों। मुझे याद है, आपकी सजाई हुई महफ़िलों ने मुझे बहुत प्रेरित किया। आपके बनाए हुए साहित्यिक वातावरण ने मेरे अंदर ग़ज़लों का जोश जगाया और मैंने बाक्रायदा ग़ज़लें लिखना शुरू कीं। इस सब में आपको भी श्रेय जाता है। हाँ, यह ज़रूर है कि बनने के लिए कुछ खुद के अंदर भी जिज्ञासा का होना ज़रूरी है। आग किस मन में नहीं सुलगती? बस दियासलाई दिखाने की देर होती है। मेरे अंदर भी बहुत सी ग़ज़लें सुलग रही थीं, जो भड़क उठीं। एक मेरा शेर सुनिए:

यह सुना है आज तू भी चैन से सोया नहीं
मैं समझता था खुदा तेरा ही है मेरा नहीं

ग़ज़लों की क्रलम में ग़म का रंग न हो, तो ग़ज़ल बेरंगी है और मेरे मन में तो ग़म के कुबेर का राज है।

प्रश्न: अफ़रोज़ जी, आपने कहा-मेरे मन में तो ग़म के कुबेर का राज है। उसी राज के भीतरी और बाह्य कौन से कारण थे, जिन्होंने आपसे ग़ज़लें लिखवाई ?

उत्तर: ग़ज़लकार बनने के भीतरी कारण की तरफ़ इशारा दे ही चुका हूँ; लेकिन चलिए और स्पष्ट किये देता हूँ कि यदि सिद्धार्थ केवल महलों में ही रहता, बाहर न निकलता तो शायद वह कभी भी महात्मा बुद्ध न बन पाता। आराम की ज़िन्दगी, इशरत का जीवन कभी मानव के मन में सवाल पैदा नहीं कर सकता, सवालता तभी उठते हैं जब मन में टीस पैदा होती है, दुःख पैदा होता है, तभी क्रलम उसका शोक साथी बनता है और दिल के बोझ पत्रे पर उतारता है। मेरे मन में भला ग़मों की क्या कमी, बचपन से लेकर अब तक ग़म और खुशी की धूप-छाँव ने मुझे हिला दिया। यह है अंदरूनी वजह ग़ज़ल लिखने की। जब खुद काँटों से गुज़रा तब ज्ञात हुई दूसरों की चुभन, यह है बाहरी वजह ग़ज़ल लिखने की।

स्वतंत्रता संग्राम यानी कि अठारह सौ सत्तावन के दौरान भारत में सब से ज़्यादा ग़ज़लें लिखी गईं और तभी अच्छे-अच्छे शायर भी पैदा हुए, जिसकी वजह भारत की लाचारी, कमज़ोरी थी। सब के सामने भारत का भविष्य अंधकार में डूब रहा था और भारतवासी कुछ न कर पा रहे थे। उस समय कुछ लोगों ने क्रलम उठाई और ग़ज़लों के रूप में दुःख, दर्द, शिकायतें लिखना शुरू कीं। ढंके-छुपे

अंदाज में ग़ज़लों से संदेश फैलाए। तो ग़ज़ल तभी उभरती है, जब शक्ति क्षीण होकर भावुकता का रूप गृहण कर ले। यही तो मेरे साथ हुआ। ग़ालिब कहते हैं,

क्रैद-ए-हयात ओ बंद-ए-गम अस्ल में दोनों एक हैं

मौत से पहले आदमी गम से निजात पाये क्यों? ग़ज़ल की तरफ आकर्षित होने की वजह।

यदि आप ग़ज़ल की बनावट को ध्यान से देखें तो मालूम होगा कि ग़ज़लें अशर (शेर का बहुवचन) से मिलकर बनती हैं। और हर शेर अपनी अलग कहानी रख सकता है। ज़रूरी नहीं है कि ग़ज़ल के एक शेर का दूसरे शेर से कोई रिश्ता हो। तो मैं कहूँगा कि एक ग़ज़ल में जितने शेर हों तो उतनी ही कहानियाँ हो सकती हैं या उतने ही भाव हो सकते हैं। यह बात मुझे किसी और काव्य में नहीं मिलती। ग़ज़ल की यही खूबी मुझे अपनी ओर आकर्षित करती है। केवल पाठक ही उस से आनन्द नहीं लेता बल्कि कवि भी लिखने में मज़ा लेता है, क्योंकि एक ही ग़ज़ल में कई प्रकार की भावनाएँ उजागर होती हैं। कवि के भाव एक ही ग़ज़ल में बंदिश से आज़ाद होते हैं, परन्तु हाँ, ग़ज़ल की बनावट के भीतर क्राफ़ियाबंदी की बंदिश अनिवार्य है। यही बंदिश अशर के विभिन्न भावों को एक माला में पिरोती है। मुझे इस सब में उलझने और सुलझने में बड़ा मज़ा आता है। दूसरी चीज़ ग़ज़लों की बड़ी आकर्षक है, वह है उसका विषय। लोग कहते हैं कि ग़ज़लें केवल प्रेम भाव, शृंगार रस की रसिया हैं। मैं समझता हूँ कि ऐसा ही सब कुछ नहीं है। ग़ज़लों के अशर का कोई भी विषय हो सकता है। प्रेम भाव, विरह, राजनीति, इतिहास, मिलन, शिकवा, जवाब-शिकवा, घृणा, लगाव, भक्ति, इत्यादि, सभी विषय पाये जाते हैं ग़ज़लों में। बहुत कुछ लिखा जा चुका है लेकिन मैं समझता हूँ कि बहुत कुछ लिखा जाना है, जिस के कारण मेरा मन ग़ज़लों में उलझा है, किंतु अपने गीतों, दोहों, भजनों से बेवफ़ाई नहीं कर सकता; जिन्होंने मेरे संस्कार को बचपन से उंगली पकड़कर चलना सिखाया। ये भी दोष ब दोष, क्रदम ब क्रदम मेरे साथ हैं।

प्रश्न: अफ़रोज़ जी, उर्दू ग़ज़ल और हिन्दी ग़ज़ल में अंतर है, इसे लेकर कई बार बुद्धिजीवियों में बहस होती है। आप क्या सोचते

हैं ?

उत्तर: हिन्दी ग़ज़ल और उर्दू ग़ज़ल में वही अंतर है जो हिन्दी या उर्दू शब्द में है, जिसको लोग दो भाषाएँ बनाने में जुटे हुए हैं। वास्तव में ग़ज़ल तो ग़ज़ल ही है इस के पहले हिन्दी या उर्दू लगाने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। मुझे डर है कि हिन्दी-उर्दू के चक्कर में कहीं ग़ज़ल की मौलिकता न मारी जाये और इसे मैं ऐसे भी कह सकता हूँ कि मैं डरता हूँ कि एक तरफ अरबी, फ़ारसी की और दूसरी तरफ संस्कृत की शब्दावली की भरा-भरी में कहीं ग़ज़ल की नज़ाकत को नुकसान न पहुँचे। उदाहरण के तौर पर दोहे दोहे हैं, उसे हिन्दी दोहे कहने की क्या आवश्यकता है। कल कोई थोड़ी फ़ारसी या अरबी की शब्दावली टूँसकर उसे उर्दू दोहे कहने लगे तो दोहे के वातावरण के हक में अनर्थ होगा।

हर साहित्य विशेषतः काव्य अपने ही वातावरण में सुहाता है। तो मेरा जवाब यह है कि हिन्दी ग़ज़ल और उर्दू ग़ज़ल में कोई अंतर नहीं है। इस काव्य का रूप, इसका अनुशासन तो वही रहेगा केवल शब्द हवा के पत्ते की तरह से आते जाते रहते हैं, उस से क्या फ़र्क पड़ता। किसी व्यक्ति का नाम बदलने से उसका चरित्र या आत्मा नहीं बदलती। वह तो वही रहेगी। फूल का नाम बदलने से उसका रंग और खुशबू नहीं बदलती।

प्रश्न: ग़ज़ल के लिए मीटर के अनुशासन की ज़रूरत होती है। आप ने उसको कहीं से सीखा होगा।

उत्तर: आप खुद ग़ज़लकार भी हैं। आपको मालूम है ही कि शायरी शुरू से सीखी नहीं जा सकती बल्कि हाँ सुधारी, सँवारी जा सकती है। इसमें घर के वातावरण का भी काफ़ी हाथ होता है। आप भी उपेन्द्रनाथ अशक के परिवार से आ रही हैं, आप उसे बखूबी समझती हैं। मेरी माँ और मामू शायर थे। हमने अपने घर में होश सँभालते ही नॉवल, पत्रिकाएँ, और शायरी की किताबें पाईं, घर में शायरी पर चर्चा सुनी तो खुद ब खुद शायरी का शौक पैदा हुआ और बड़े-बड़े शायरों को पढ़कर मीटर तथा संतुलन का होश आया। इसके साथ-साथ सुर और ताल से भी लगाव हुआ। उस में भी इधर-उधर से शिक्षा हासिल की। फिर इसके बाद इल्म-ए-उरूज़ (ग़ज़ल मीटर ज्ञान) के कोर्स ने मेरी काफ़ी सहायता की।

ग़ज़लों के मीटर इतने आसान नहीं, जितने दिखते हैं। जिनमें संगीत की तालों से इनका काफ़ी नाता है। संगीत के शौक़ ने मेरी ग़ज़लों की बहर (मीटर) समझने में मेरी काफ़ी मदद की। इसको खूब से खूबतर सीखने का शौक़ पैदा हुआ। यही जिज्ञासा मुझे एम ए और पीएच. डी की ओर ले गई।

प्रश्न: ग़ज़लें शृंगार और सूफ़ी दर्शन को लेकर लिखी और मानी जाती हैं। चोट भी पहुँचाती हैं और उस पर मरहम भी लगाती हैं। पर आज की ग़ज़लें जीवन की जटिलताओं, संघर्षों और सामाजिक संवेदनाओं को लेकर भी लिखी जाती हैं। आप क्या सोचते हैं इसके विषय में?

उत्तर: लोग जो समझते हैं कि ग़ज़ल केवल आशिक, माशूक की वार्ता या इशक बाज़ी है, शायद वे ग़लती पर हैं। हाँ मैं इतना ज़रूर कहूँगा कि कुछ कवि ग़ज़लों में इशक के विषय से आगे बढ़ते ही नहीं। वैसे यह भी बता दूँ कि बहुत सी ग़ज़लों में लगता है कि इशक, ज़ुल्फ़ें, बेवफ़ाई, वफ़ा, या प्रेमिका की आँखों के या हुस्न के बारे में बात हो रही है, मगर सिर्फ़ ऐसा नहीं। ये तो केवल सुन्दर प्रतीक हैं। बात तो भक्ति या भगवान् की हो रही है, या राजनीति की ओर इशारा है। अस्ल में पाठक पर निर्भर है कि वह यह बात कैसे समझा। ऊपर बताए हुए उदाहरण ग़ज़ल की परम्परा में शामिल हैं। ख़ास कर उन्नीसवीं शताब्दी में शराब और शबाब की मिसालों से ही पाठक को आकर्षित किया जा सकता था। इसी शृंगार रस के पीछे ढके छुपे अंदाज में राजनैतिक ज़ुल्म के खिलाफ़ आवाज़ उठाई जाती थी। बेशक सूफ़ी दर्शन ग़ज़लों का अहम विषय है मगर कौन जाने कि प्रेमी की बात हो रही है या भगवान् की? मिर्ज़ा ग़ालिब के एक शेर में आता है:

ज़िक्र उस परीवश का और फिर बयाँ अपना बन गया रकीब आख़िर था जो राजदाँ अपना यह परीवश (या परी जैसा) कौन है? वह या वह? शायद मिर्ज़ा ग़ालिब को ही पता हो। बस मैं ऐसा ही सोचता हूँ कि जब मैं लिखता हूँ तो पाठक पर छोड़ता हूँ कि मेरा विषय क्या है, या मैं किस से संबोधित हूँ। मैं क्यों बताऊँ? वे मुझे जैसा समझते हैं वैसा सोच लें। कभी मेरी कविताओं में मरहम भी पीड़ा का कारण बनता है तो कभी पीड़ा भी मेरा मरहम। जीवन की जटिलताओं से प्रेरित होकर बहुत

पहले से ग़ज़लें लिखी जाती रही हैं। मगर ढके-छुपे अंदाज़ में। मीर तक़ी 'मीर' की मिसाल सबसे साफ़ है। आज सब साफ़-साफ़ लिखा जाता है। मेरी ग़ज़लों में वह सब कुछ है जो मेरे साथ हुआ। ऐसा तो सभी लिखते हैं। हाँ मगर इसके साथ मैंने उस पीड़ा का भी अनुभव किया है, जो मुझे नहीं मिली। ग़ज़लें यदि केवल शब्दों का शृंगार हैं और उसकी सुन्दरता केवल उलझावे हैं तो वे मुझे आकर्षित नहीं करतीं। इस प्रयत्न को मैं व्यर्थ मानता हूँ। अपनी ग़ज़लों में मैं पूरी कोशिश करता हूँ कि सुधार संदेश बिलकुल साफ़ हो, आसान शब्दावली में एकता की बात कही जा सके।

ऊँच-नीच, छूत-छात, धर्म प्रतियोगता, देश भक्ति अतिवाद, सीमाओं का लोभ, धन संचय और स्त्री विरोध साज़िश के खिलाफ़ हमेशा आवाज़ उठाई है मैंने अपनी ग़ज़लों में। लोग कहते हैं कि इन विषयों का ग़ज़ल से क्या रिश्ता, मैं कहता हूँ, क्यों नहीं?

प्रश्न: ग़ज़ल का हिन्दी साहित्य में भविष्य क्या है? आप की राय जानना चाहती हूँ; क्योंकि ग़ज़ल अभी हिन्दी साहित्य में अपनी दिशा ढूँढ़ रही है।

उत्तर: इस सवाल के जवाब में मैं आपको एक सच्ची घटना सुनाता हूँ जो मुझ पर बीती। मुझे अमलतास से बड़ा प्रेम है। अमलतास एक प्रकार का वृक्ष होता है, जो भारत में घनी गर्मियों में फूलता फूलता है। इसके पीले-पीले फूलों की सुगंध आस-पास की गलियों तक बस जाती है। मुझे अपने बचपन की याद दिलाता है यह फूलों भरा पेड़। उसकी मीठी-मीठी खुशबू की चाह में मैंने न जाने कहाँ से उसका एक बीज पा लिया, और उसे नॉर्थ कैरोलाइना में अपने घर के सामने बीज दिया। कुछ हफ्ते बाद अंकुर फूट आया और धीरे-धीरे वो पौधा बड़ा होने लगा और मेरे मन में मेरे घर के सामने अमलतास के फूलों भरे वृक्ष की आशाएँ बढ़ने लगीं। लेकिन एक हद तक उसने मुझे खुश रखने की कोशिश की। अमरीका के वातावरण से अनथक लड़ने के बावजूद यह पौधा पेड़ बनने से बहुत पहले ही हार मान गया। देखते ही देखते पौधे की जगह एक सूखी टहनी रह गई।

तब मैंने सीखा कि यदि मुझको अमलतास से प्रेम है तो मुझे क्या हक़ है, अमलतास को उसके वातावरण से बाहर उगाने का? इसका मतलब यह

हरगिज़ नहीं है कि अब मैं अमलतास को कम पसंद करता हूँ। अब भी वो मेरे प्राणों के निकट है। उसकी खुशबू मुझे अपनी ओर खींचती है। जब भी मैं उस से आनन्द लेना चाहता हूँ, भारत जाता हूँ और गर्मियों की लू में उसके साये में चारपाई खींचकर बैठता हूँ। ज़रूरी नहीं कि जो फूल मुझे पसंद हो उसे ज़बरदस्ती अपने आँगन में ही उगाऊँ चाहे वो उग न पाए। मैं अमलतास की सेवा भारत जाकर भी कर सकता हूँ। वो भी खुश, मैं भी खुश और भविष्य भी खुश।

हाँ इतना ज़रूर है शायद अमलतास की धरती की सीमा भारत और अमरीका के कहीं बीच में हो तो शायद मुझे इतनी दूर न जाकर मेरा प्रेमी वृक्ष हँसी खुशी फलता-फूलता किसी करीब देश में मिल जाए। यह भी एक समझौते का रूप है। क्या मैं आपके सवाल का जवाब समझा पाया? मेरा तात्पर्य है कि चाहत में प्रेमी को पाने के लिये थोड़ा बढ़ना पड़ता है, न कि उसे अपनी ही ओर खींचा जाए।

प्रश्न: प्रवासवास आपकी सृजनात्मक प्रक्रिया में कितना सहायक है।

उत्तर: डॉ. ढींगरा जी, जैसे मैं पहले बता ही चुका हूँ कि अमरीका आने से पहले ही मैं लिख रहा था, पर हाँ जब मैं अमरीका आया तो सोचा कि अब इस सब के लिए मेरे पास समय कहाँ होगा और यदि होगा भी तो कौन सुनेगा विदेश में देशी काव्य। पर यह सब इसका उलटा हुआ। सुनने वाले भी मिले, लिखने का समय भी और आप जैसे लिखने वाले सहपाठी भी। यहाँ अमरीका में हम अपने समय की दिनचर्या अपने अनुसार बना सकते हैं; क्योंकि अधिकतर हर चीज़ समय पर शुरू होकर समय पर खत्म होती है। तो हमारी दिनचर्या पर हमारा नियंत्रण होता है। इसमें यदि आप लिखना चाहते हैं तो समय निकल आता है। सामाजिक मिलना जुलना इत्यादि अपने समय के हिसाब से रख सकते हैं या निमन्त्रणों का समय निश्चित है। लिखने में इस सब ने मेरी काफ़ी मदद की। देश, देशवासी और कुटुम्ब के लोग छोड़कर आया तो बड़ा भावुक था। मैंने इन भावनाओं को अपनी ग़ज़लों या गीतों में उतारा। इसके अतिरिक्त मैंने यहाँ आकर अपने देश के बाहर भी देखने और उनको दिखाने का कर्तव्य भी समझा। भ्रष्टाचार पीड़ा कहाँ नहीं है, निर्धनता कहाँ नहीं है, बँटवारे

कहाँ नहीं हैं? पहले मैं समझता था कि ये सब केवल भारत में ही हैं, अमरीका आने के बाद अब मेरा क़लम मेरे देश की सीमाओं के बाहर के बारे में भी सोचता है और यदि आप जैसे सफल लेखक अमरीका में एक ही नगर के वासी हों तो विचार केगगन में चार चाँद तो लग ही जाएँगे।

प्रश्न: अफ़रोज़ जी, किन समकालीन ग़ज़लकारों से आप प्रभावित हैं?

उत्तर: यूँ तो अपने ज़माने के सारे ही ग़ज़लकार मुझे पसंद हैं क्योंकि सब ही मुझे प्रेरित करते हैं। मगर हाँ कुछ एक शायर मेरे नज़र में अलग ही हैं, मिसाल के तौर पर वसीम बरेलवी, बशीर बद्र, परवीन शाकिर और अहमद फ़राज़ तो आज के दौर के संग-ए-मील हैं। अहमद फ़राज़ का यह शेर कौन नहीं जानता-

किस किसको बताएँगे जुदाई का सबब हम
तू मुझसे ख़फ़ा है तो ज़माने के लिये आ
यह शेर दिल पर गहरा असर छोड़ता है। समाज के सामने मुहब्बत को निभाए रखना भी समाज के सामने कभी-कभी एक कुरबानी बन जाता है, और दूसरी तरफ़ परवीन शाकिर मर्दों के समाज के जुल्म को अपनी ग़लती मानते हुए कहती हैं--

डसने लगे हैं ख़्वाब मगर किस से बोलिये
मैं जानती थी पाल रही हूँ सँपोलिये
ये वही हैं जिनकी ग़ज़लों में औरत की आवाज़ और पुकार है। ग़ज़ल में अनावश्यक लफ़्फ़ाज़ी से परहेज़ करना अनिवार्य है। परवीन शाकिर भी साफ़ गोई पर विश्वास रखती हैं। तो ये हैं मेरे कुछ समकालीन ग़ज़लकार जिनसे मैं प्रभावित हूँ। कुछ और भी होंगे जो याद नहीं पड़ रहे।

अफ़रोज़ जी आपकी हार्दिक आभारी हूँ, कि आपने अपनी व्यस्तताओं में से समय निकाल कर मुझे साक्षात्कार दिया।

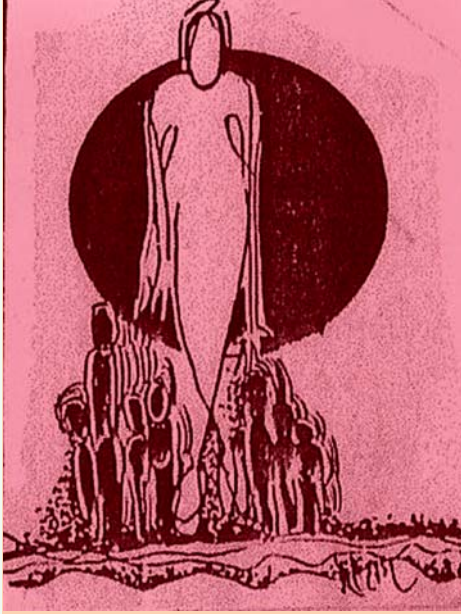
डॉ. सुधा ओम ढींगरा जी, बहुत बहुत धन्यवाद आपका भी, कि आपने मुझ नाचीज़ को इस साक्षात्कार के क़ाबिल समझा, धन्यवाद।

(डॉ. अफ़रोज़ ताज़ रेडियो, टीवी और रंगमंच के प्रतिष्ठित कलाकार हैं। अन्य विषयों पर की गई इनसे लम्बी बातचीत आप शिवना प्रकाशन की आगामी पुस्तक वैश्विक रचनाकार: कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ-भाग दो में पढ़ पाएँगे)



परिचय

माधव नागदा



क्रांति के बाद

पारस दासोत

तेज हवा के कारण,
महल के दरवाजे-खिड़कियाँ खड़ाक-खड़ाक
की आवाज़ के साथ खुल गए।
हॉल में सजे फानूस, थरथराने लगे।
दीवार पर टैंगी तस्वीर, संगमरमरी फर्श पर आ
पड़ी और शीशा, चटककर चूर-चूर हो गया।
दीवार पर एक अकेली कील दिखाई दे रही
थी।
कुछ महीने ही बीते होंगे।
हवा का एक झोंका, हॉल में किसी तरह फिर
आ घुसा। उसे हॉल में एक पूर्व परिचित कील
दिखलाई दी।
कील पर पहले से बड़ी तस्वीर टैंगी थी।

□

जब से उसका स्थानान्तरण आदेश आया है
सब मन ही मन खूब पुलकित हैं। खूबीचन्द चपरासी
से लेकर बड़े बाबू खेमराज तक सब। कैसी होगी
वह? युवा अधेड़ या वृद्ध? फैशनेबल या सीधी-
सादी? दिलफेंक या गुमसुम? गोरी या काली?
खूबसूरत या कमसूरत? किसे पसन्द करेगी? वर्मा
को या शर्मा को? कौन बनेगा उसका खासमखास?
बड़ा बाबू या बॉस? तरह-तरह की अटकलें। तरह-
तरह के अनुमान। लोग बार-बार स्थानान्तरण आदेश
देखते गोया उसकी उम्र लिखी हो या सूरत दिखती
हो या सीरत का अन्दाजा होता हो। आदेश को
सूँघते और मुस्कराते मानो कोई अनाम खुशबू उनके
नथुनों में बस गई हो।

आखिर वह दिन भी आ गया, जब उसने ज्वाइन
किया। सभी ने उसमें अपनी-अपनी कल्पना का
कोई न कोई रंग खिलते पाया। वह रूपवान् नहीं तो
कुरूप भी नहीं थी। कमसिन नहीं तो अधेड़ भी
नहीं थी। हँसोड़ तो नहीं किन्तु विनोदी स्वभाव की
थी। फैशनेबल होते हुए भी फूहड़ नहीं थी। रंग
गेंहुँआँ। आँखों में सबके प्रति एक आत्मीय भाव।
सभी उसका परिचय पाने को उतावले हो उठे। सो
एक परिचय पार्टी ही रख दी गई। औपचारिक
परिचय के पश्चात् लोगों ने उससे तरह-तरह के
सवाल पूछना शुरू किया। कितने साल की सर्विस
हो गई है? इसके पहले कहाँ-कहाँ रही? शिक्षा
कहाँ तक? विषय क्या-क्या? रुचियाँ, पसन्द,
नापसन्द वगैरह-वगैरह। एक होड़-सी। उसने सबको
सबका यथायोग्य शालीनता और विनम्रता से जवाब
दिया। फिर भी लोगों की उत्सुकता निःशेष नहीं हो
पा रही थी। वर्मा ने पूछा, 'आपके हस्बेन्ड का क्या
नाम है?'

'मिस्टर कमल।' उसने बेरुखाई से उत्तर दिया
फिर किसी और बात में लग गई।

'आपके हस्बेन्ड क्या करते हैं?'

उसने कोई ध्यान नहीं दिया। शायद जानबूझकर।

'आपके हस्बेन्ड कहाँ हैं आजकल?'

वह उखड़ गई।

'क्या मतलब है? मेरे हस्बेन्ड से क्या लेना है
आपको?' उसकी आवाज़ रूँध-सी गई। 'क्या मैंने
आप लोगों की वाइफ के बारे में कोई सवाल पूछा
है....?' आगे वह कुछ नहीं बोल सकी और उठकर
तीर की तरह बाहर निकल गई।

□



बदलाव

डॉ. श्याम सखा 'श्याम'

'सुमन्त! यह कैसा बदलाव है तुममें ! छोटे
भाई लवेश को तो तुमने प्रेम-विवाह करने नहीं
दिया था। अब बेटे के बारे में चुपचाप हार मान
बैठे।'

'क्या करूँ? विनय। तुम जानते ही हो लवेश
का विवाह हमने अपनी बिरादरी में सेठ बनवारी
लाल की लड़की से किया था। अच्छ-खासा दाज-
दहेज मिला था। मगर बिन्दू ने विवाह के तीन
महीने बाद ही न केवल घर अलग बसा लिया था,
अपितु लवेश को धमकी देती थी कि अगर तुम
माँ-बाप, भाई-भाभी से मिलने जाओगे तो दहेज
का केस कर दूँगी। अतः सोचा कि अपनी मर्जी से
विवाह करने में कम-से-कम प्रेम तो बना रहेगा
तथा इस दहेज केस के लिए कोर्ट-कचहरी की
धमकी से पीछा छूटेगा।'

□

सूरीनाम की धरती पर धड़कता भारत

कविता मालवीय

खिचड़ी दाढ़ी, दो सितारा आँखों से फिसलती हुई दबी हँसी से सनी आवाज़ आई 'मैं अंदर आ जाऊँ गुरु जी ?' कहते हुए 20 साल का युवक दक्षिण अमेरिका के सूरीनाम देश के पारामारिबो शहर के भारतीय सांस्कृतिक केंद्र के हिंदी कक्ष के द्वार से प्रवेश कर रहा था, मेरा यहाँ तीसरा दिन था, मैं हिन्दी की कक्षा में परिचय स्तर के विद्यार्थियों की थाह ले रही थी, कि उसके इस एक वाक्य ने मेरी थाह ले डाली..

गुरु जी ! वेद पढ़ाते हो ?

'अ.... ह ..मैं हिंदी पढ़ाती हूँ,' मैंने अचकचा के उत्तर दिया।

उसके चेहरे पर आशा की अभी-अभी बुझी हुई बत्ती की कालिख पुँछ गई थी, पर अपेक्षा की अधबनी दीवार से गिरते-गिरते पैर रखने को जगह बना कर 'नीरज प्रताप अभिनन्दन शर्मा पलटन तिवारी' हँस कर बोला-

'आप के पास हिंदी की पढ़ाई करनी है, आप पढ़ाओगे ?' मेरी मुस्कराती 'हाँ' में भारत देश का इसी उम्र का नौजवान घूम रहा था, क्या वो भी इतनी शिद्दत से वेद पढ़ना चाहता है ?दादी माँ का जुमला तो था सात समंदर पार ...पर यहाँ तो बसा है भारत सा संसार। सुखद आश्चर्य से रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

'5 जून 1873 ई. में जो लालारुख जहाज से ये सपनों की टोकरियाँ लेकर उतरे,जिसका सिलसिला 24 मई 1914 तक जारी रहा। गुरु जी ! मजदूरी करने के लिए जंगलों में भेजे गए। इंडिपेंडेंस स्क्वेर के पास खड़ी 'बाप माई' की सजीव मूर्तियाँ हमारे पूर्वज की याद दिलाती हैं।' कहते कहते मिस सूरीनाम की माँ शर्मीला राम रतन का स्वर आज भी भरी जाता है। फोर्ट जीलेंडिया के संग्रहालय की दीवार से लटके उन श्रमिकों के अँधेरे के कालिख से पुते चेहरे और उनके पैरों के चित्र त्रास की सिहरन से भरे हैं पर सूरीनाम का हिन्दुस्तानी उसे लेकर अपने माथे पर हाथ धर कर नहीं बैठ गया; बल्कि उसने अपनी कर्मठता की लाठी लेकर कराह की सीलन से भरी कोठरियों से निकल अपनी संस्कृति और भाषा का परचम खुले में लहराया। अपने अस्तित्व की रक्षा की रस्साकशी में भारतीय संस्कृति कंचन की तरह दमक उठी; जिसकी चमक सत्ता के गलियारों से लेकर व्यवसाय के घरानों और मंदिरों में वेद पाठों के मंत्रोच्चारण में देखी जा सकती है, जहाँ पूरे साजो शृंगार के साथ छोटी-छोटी लड़कियाँ सर ढके बिना आरती नहीं करतीं।

किसी बड़े देश की कोलोनी होने का दाग कह लो या छाप,वह चप्पे-चप्पे पर होती है, उन दागों के



हिंदी चेयर
भारतीय सांस्कृतिक केंद्र
भारतीय राजदूतावास
पारामारिबो, सूरीनाम

गड्डों के निशानों के साथ अपने चेहरे के नाक नक्श बनाए रखना मुश्किल होता है पर सूरीनाम के आप्रवासी भारतवंशियों ने कोई कसर नहीं छोड़ी अथक परिश्रम से लगातार नए लक्ष्य बनाने की और उन्हें प्राप्त करने की।

जब सूरीनाम दासता की जंजीरों से निकला भर था और पेट भरने तक की मारामारी थी। आत्मनिर्भर होने की कोशिश में तब एक हिन्दुस्तानी ऐडी झारप के विचार का पल्लव 1980 में स्टातस ओली ओयल कंपनी के रूप में वट वृक्ष बना, जिसके करोड़ों डॉलर का उत्पादन आज सूरीनाम की आर्थिक व्यवस्था का आधार है। अमेरिका की बॉक्साइट कंपनी सुरालको में हेंक र.रामदीन ने महानिदेशक के पद पर कई वर्ष तक उच्चासीन होकर अपने योगदान से चार चाँद लगाए।

कुली विद्यालय कहलाए जाने वाले स्कूलों से जीवन की शिक्षा लेकर निकले ढेरों नामों में से विश्व के सर्वश्रेष्ठ 500 व्यक्तियों में से एक सूरीनाम के लेखक 'ज्यान अधीन' का नाम सूरज की 'धार्ई' चमकता है, जिन्होंने दुनिया के पाँच विश्वविद्यालयों से डिप्लोमा और विभिन्न विषयों में डिग्रियाँ हासिल की थीं। जिनके आजा-आजी ने लालटेन के प्रकाश में कोठरी की मटमैली दीवारों पर पत्थर या लकड़ी से खोद-खोद कर, लिख कर अपनी भाषा को मरने नहीं दिया। उन्हीं के लालों में से एक सूरीनाम के प्रोफेसर मित्तार सिंह कई कानून की किताबों के रचयिता 'फ़ादर ऑफ ला' कहलाए। कर्म योग के ज्ञाता पंडित सूर्यपाल रतन जी ने तो सूरीनाम पर दोहों में छोटी मोटी रामायण ही लिख डाली है। श्रीनिवासी मार्तिनस लक्ष्मण जैसे कई कलाकार तो डच और सरनामी में कविताएँ लिखकर विश्व पटल पर अपना नाम खोद ही चुके हैं।

सौ सालों के सर्वोत्तम खिलाड़ियों में एक कुश्ती पहलवान अम्बिका प्रसाद जी के पूर्वज भारत से जहाज़ में अपने साथ गुल्ली-डंडा, लाठी, कुश्ती और बनेठी लेकर आए थे, तो उन्होंने फिर अपने सपनों को गिरमिटिया मज़दूर के त्रासद जीवन में डूबने नहीं दिया, रूप दिया उनको ! साकार किया उनको !

फ्रेडरिक रामदत मिसिर (मास्टर इन लॉ), रामसेवक शंकर और जूल्स आर अयोध्या कई वर्षों तक सूरीनाम के राष्ट्रपति पद पर सफलता पूर्वक आसीन रहे, जगरनाथ लखमन ने 1949 से 2005

तक सूरीनाम की नेशनल असेम्बली का अहं हिस्सा रह कर 'हम से सूरीनाम है हम सूरीनाम से है' का नारा बुलंद किया।

सूरीनाम में नदियों के किनारे बड़े घटनाप्रद हैं। बिंदास प्रेम, धैर्यवान मछलीमार, पारबो बियर के झाग, किनारे लगे बड़े विशाल जहाज़ और छोटी नावों पर चढ़ते उतारते, जंगल में जाने के साजो सामान इस सब के बाद वे रात को होली के एक महीना, पहले से गाए जाने वाले चौताल के समूह में बैठे 'कबीर हमार भी सुनो' कह रहे होते हैं। नगाड़े की थाप पर बैठक गाना और चटनी जैसे लोक कला के गानों की प्रथा को सूरीनाम के कई दिग्गज कलाकार रामदेव चैतु, हरिशिव बालक, अपफेंडी केटवारू, सुखराम अक्कल और क्रिस रामखिलावन (भोजपुरी पॉप 'चटनी') आदि वैश्विक मंच पर लेकर आए।

शायद जब कुछ छूटने लगता है, तब पकड़ना याद आता है। यहाँ आए हुए भारतवंशियों के साथ भी यही हुआ। 66 प्रतिशत हिन्दुस्तानीयों ने जब सूरीनाम की धरती पर रुकने का निर्णय लिया, तो वह सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक और भावनात्मक अस्तित्व की सीमाओं पर एक अनवरत युद्ध का ऐलान था। अस्तित्व और अस्मिता के बचाने की लड़ाई में अगम अगोचर की तरफ ही अपना कल्याण नज़र आया और अपनी संस्कृति और धर्म डूबते को तिनके का सहारा होते हैं, शायद यही कारण है कि सूरीनाम में इस वक्त 100 मस्जिदें और 134 मंदिर हैं (आर्य समाजी, सनातन धर्मी, गायत्री समाज)। भारत के अमूमन हर धार्मिक ग्रन्थ का अनुवाद डच भाषा में हो चुका है और हिंदी और उर्दू भाषा के शिक्षा के मंदिर अधिकतर मंदिरों और मस्जिदों में खुले हुए हैं। अस्सी वर्ष से ज़्यादा उम्र के पंडित पाटनदीन को तो अधिकतर रामायण मुँह जुबानी याद है।

1901 में मुंबई से मुद्रित नाथूराम की 'हिंदी की पहली किताब' से शुरुआत कर और एक लंबा सफ़र तय कर भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र की पाठ्य पुस्तकें 'मंजूषा' और राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा (महाराष्ट्र) की पुस्तकों को अपने सीने से लगाए यहाँ की युवा पीढ़ी और प्रौढ़ वर्ग बिना किसी वेतन के हिंदी भाषा के विकास की सतत मुहीम में सलंगन हैं। गौर करने लायक बात यह है कि महातम सिंह और हरदेव सहतु जैसे कर्मठ व्यक्तियों के दिशा

निर्देशन व सहयोग ने सूरीनाम में हिंदी भाषा के स्वर व्यंजन को एक इतिहास नहीं बनने दिया गया अपितु उसे घर-घर तक पहुँचाया और महादेव खून खून, सुरजन परोही, अमरसिंह रमण जैसे कई कवियों ने सरनामी व हिंदी साहित्य की चौखट के भी दर्शन करवाए।

पारामारिबो में स्थित भारतीय दूतावास द्वारा हिंदी के प्रचार प्रसार के लिए यहाँ के अध्यापकों व पाठशालाओं को मानदेय प्रदान किया जाता है, सूरीनाम हिंदी परिषद संस्था के द्वारा हिंदी की हर वर्ष प्रथमा स्तर से लेकर कोविद स्तर तक परीक्षाएँ आयोजित की जाती हैं, जिसमें हर साल 450 से 500 तक बच्चे बड़े बूढ़े भाग लेते हैं।

अवधी-भोजपुरी मिश्रित सरनामी बोली का मीठापन चाशनी के दो तार जिह्वा पर छोड़ देता है, वहीं हिंदी भाषा के रत्न स्तर के विद्यार्थी आर्य समाज मंदिर के पुरोहित जगदीश बीरे जी और अवतार विरजानंद सरीखे कई पंडितों की शुद्ध बोली व्याकरण के नियमों की याद दिलाती है। जब रामायण पाठ की कक्षा में मैंने बिना हाथ जोड़े रामचरित मानस खोल कर पढ़ना शुरू कर दिया तो दिल से हिन्दुस्तानी पर पाश्चात्य परिधानों में सजी महिलाओं की नज़रों के संदेह ने पैरों के नीचे कांटे बो दिए कि अगली बार मैं बिना सर नवाए रामायण नहीं खोल पाई।

वर्षा जंगलों, मछलियों और पारबो बियर के देश में रास्तों पर अदरक की चाय की गुमटी तलाशोगे तो ये मामला थोड़ा वैभव विलास की तरफ चला जाता है !! सूरीनाम के एक जिले निकरी जाते हुए आई सी सी के वाहन चालक धर्मपाल से यहाँ की चाय 'फर्नाडिस' का ठंडा पेय पीते हुए पूछा कि यहाँ के कुछ धनी समृद्ध और बुद्धिजीवी लोगों के नाम बताओ तो उसने बताया कि शुरू से अब तक सूरीनाम देश में आटा के सबसे बड़े निर्माता 'भिखारी' का नाम चमकता है, दलीप सरजू, कुलदीप सिंह और बैताली यहाँ के बड़का व्यापारियों में से हैं। यह सुनकर मैं ठिठक गई परत दर परत बातचीत के बाद गरीब, झगडू या प्रेमचंद भोंदू (जो ज्ञानी और एक कवि हैं) जैसे नामों का जो नामा खुला, वह कहीं दिलचस्प तो कहीं अहं को चोट पहुँचाने वाला था। सन 1975 में हिंदी का ज्ञान बाँटने के लिए गठित 'सूरीनाम हिंदी परिषद' के सचिव हारोल्ड प्रामसुख और सुषमा खेदू के साथ बातचीत

में पता लगा कि कैसे नामों के रूप बदलने शुरू हुए। भारत देश से ठेके पर लाये गए मजदूरों ने जब जहाज से उतरते वक्त अपने नाम बताए तो विदेशी अधिकारियों को अनजान भाषा के जो नाम सुनने में आए उन्होंने वही लिख कर उनकी छाती पर पर्ची चिपका दी। दासप्रथा के दौरान अगर जिस नर्स ने बच्चे की डिलीवरी करवाई उसने अपना नाम उस बच्चे को दे दिया। यहाँ तक कि विदेशी मालिक अधिकारियों ने दासों के पूरे समूह को अपने नाम दे दिए, कहीं पर पारिवारिक नाम मुख्य नाम बन गया कहीं मुख्य नाम पारिवारिक।

पर कुछ नाम दुनिया भर में फैली हुई जातिवाद समस्या के मुँह पर एक तमाचा थे, 'जेम्स लाल मोहम्मद' जो तीन धर्मों को अपने कन्धों पर उठाये हुए हैं। एक जैसी वर्तनी का नाम 'महाबली' हिंदू के लिए महाबली, मुसलमान के लिए महाब अली। पंडित हिंदू का नाम-साहिबदीन और मुसलमान भाई का नाम-भगेलू और भोलई। आह चैन सा आ आता है।

हिंदी की कोविद स्तर की कक्षा में अपनी विरासत को बचाने की बात चली तो सूरीनाम के बैंक डी एस बी के सेवानिवृत्त आई टी प्रबंधक,

संगीतकार, नगाड़े, बाज, चौताल गायक, पुराने कुश्ती पहलवान और हिंदी के विद्यार्थी मनोरथ जी ने दो पंक्ति धमार (चैती, विस्वारा पछैयाँ उलारा) 'रघुवर जनक लली खेले अवधपुरी में फाग' की सुनाई फिर बोले, 'मेरे बाप दादे भारत पर से आए हैं और हम उनका अंश है, ये जोन सम्बन्ध है वोह अब नहीं टूटेगा, क्योंकि मेरे बच्चे भी वही रास्ते रहेंगे जोन मेरे बेटे जने हैं, वो तो और आगे हैं इसके बारे में बहुत सोचिला कि हमारा मन वही लगल है, मैं भारत की उस गली में ही मरना चाहता हूँ। हम लोग की रूह वहीं है। इन्द्रजाल पढ़ कर वैद्य भारत की वैद्य आत्माओं को अपने पर बुला कर इलाज करा करते थे और इस प्रेम की ...इसकी कोई सीमा नहीं क्योंकि मैं अपने बाप दादों का अंश हूँ वो भारत से थे, मैं क्या मेरे बेटे भी उसी रास्ते पर हैं उनके बच्चे तो और.....',


यहाँ के पेड़ भी यहाँ के 'मल्टी ऐथनिक कल्चर' का हस्ताक्षर हैं। एक ही पेड़ पर दूसरी जाति के पौधे बड़े ठाठ से अपना भरा पूरा परिवार उगा सूरीनाम की धरती पर रह रहे बुश नीग्रो, क्रियोल, हिंदुस्तानियों, जावानीज चाईनीज, और यूरोपियन आदि जातियों के समृद्ध अस्तित्व की गवाही देते

हैं। हर परिवार जातियों का नहीं, कई राष्ट्रों का संगम है। हिंदी की विद्यार्थी सिलवाना ने बताया उसके परिवार में इस वक्त जावनीज, डच, लेबनीज, हिन्दुस्तानी और चायनीज सब मौजूद हैं।

पाँच साल के ठेके के बाद सूरीनाम आए 34000 गिरमिटिया मजदूरों में से 11000 भारत लौट गए और बचे हुए हिंदुस्तानियों ने अपने शेष रहे सम्मान की इमारत की नींव खोदनी जो शुरू की तो आज अपने लहू और स्वेद बिंदुओं के गारे से ईंट से ईंट चुनकर उस इमारत को बुलंदियों तक पहुँचा दिया है। मरियम बुरख पर खड़े हो कर मारे गए मजदूरों पर हुए कोड़ों के मार की कसक जहाँ झुरझुरी पैदा कर देती है, वहीं वासुदेव की तरह भारतीय संस्कृति व सम्मान को अपने सर पर रख न जाने कितनी जानलेवा प्रलय मचाती लहरों के बीच में से निकाल लाये हिंदुस्तानियों की संघर्ष गाथा से शरीर का रोम-रोम थरथरा उठता है, कभी गर्व से तो कभी दर्द से।

चलते चलतेहर भारतवंशी आप्रवासी की आँखों में भारत देश के नाम से जो चमक आती है, तो मुझे अपने भारतवासी होने पर गर्व हो आता है।



	<h2 style="color: #e91e63;">Hindi Pracharni Sabha</h2> <p>(Non-Profit Charitable Organization)</p> <p>Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna ID No. 84016 0410 RR0001</p> <p>'For Donation and Life Membership we will provide a Tax Receipt'</p> <p>Annual Subscription: \$25.00 Canada and U.S.A.</p> <p>Life Membership: \$200.00</p> <p>Donation: \$</p> <p>Method of Payment: Cheque, payable to "Hindi Pracharni Sabha"</p>	<p>सदस्यता शुल्क</p> <p>(भारत में)</p> <p>वार्षिक : 400 रुपये</p> <p>दो वर्ष : 600 रुपये</p> <p>पाँच वर्ष : 1500 रुपये</p> <p>आजीवन : 3000 रुपये</p>
	<p>Contact in Canada:</p> <p>Hindi Pracharni Sabha</p> <p>6 Larksmere Court</p> <p>Markham,</p> <p>Ontario L3R 3R1</p> <p>Canada</p> <p>(905)-475-7165</p> <p>Fax: (905)-475-8667</p> <p>e-mail: hindichetna@yahoo.ca</p>	<p>Contact in USA:</p> <p>Dr. Sudha Om Dhingra</p> <p>101 Guymon Court</p> <p>Morrisville,</p> <p>North Carolina</p> <p>NC27560</p> <p>USA</p> <p>(919)-678-9056</p> <p>e-mail: ceddlt@yahoo.com</p>



(चीनी लेखिका युंग चांग की आत्मकथा
'वाइल्ड स्वॉन्स' का एक अंश)



सुधा अरोड़ा, १७०२ सलियेयर, हीरानंदानी
गार्डेंस, पवई, मुंबई -४०० ०७६
फोन-०९७५७४ ९४५०५,
ई-मेल -sudhaarora@gmail.com

तीन इंच के स्वर्ण फूल

युंग चांग

(अनुवाद-सुधा अरोड़ा)

पंद्रह साल की उम्र में मेरी दादी एक मुख्य सेनापति की रखैल बन गई थीं। यह १९२४ का साल था और चीन में अराजकता छाई थी। चीन का अधिकतर हिस्सा, मंचूरिया सहित-जहाँ मेरी दादी रहती थीं-सेनापतियों द्वारा शासित था। यह संबंध उसके पिता द्वारा तय किया गया था, जो मंचूरिया के दक्षिण भाग में स्थित यिक्सियन में पुलिस अफसर थे।

मेरी दादी के पिता अपने परिवार के अकेले लाड़ले बेटे थे और उन्हें अपने परिवार में इसकी वजह से एक खास ऊँचा ओहदा मिला हुआ था। केवल एक बेटा ही अपने वंश का नाम आगे बढ़ा सकता था, उसके बिना एक परिवार की वंश बेल रुक सकती थी, जो अपने पूर्वजों के प्रति बहुत बड़ा विश्वासघात थी। उन्हें अच्छे स्कूल में भेजा गया ताकि वे परीक्षाएँ पास करके एक अच्छे पुलिस अफसर बन सकें, जो उस समय के अधिकांश चीनी युवकों का एकमात्र लक्ष्य था। अफसर बनना सत्ता और ताकत लाता था और सत्ता से पैसा आता था। बिना सत्ता और पैसे के कोई भी चीनी अफसर के शोषण से सुरक्षित महसूस नहीं करता था। कोई सही कानून या न्याय विधान नहीं था। ताकतवर अफसर ही कानून थे। अधिकतर औरतें सिलाई करती थीं और देर रात तक पोशाकें तैयार करने का काम करती थीं। पैसा बचाने के लिए वे अपनी लालटेन बिल्कुल धीमी रोशनी पर रखतीं, जिससे उनकी आँखों को स्थायी नुकसान पहुँचता था। लगातार घंटों काम करने से उनकी उँगलियों की गठानें सूज कर दर्द करने लगती थीं।

चीन के पुराने रिवाज के तहत चौदह साल की छोटी उम्र में मेरे परदादा की शादी अपने से छह साल बड़ी लड़की से कर दी गई थी। अपने पति की देखभाल करना और उसे बड़ा होने में मदद करना एक पत्नी का धर्म माना जाता था। उनकी छह साल बड़ी पत्नी मेरी परदादी की कहानी उस वक्त की लाखों चीनी औरतों की एक औसत कहानी थी। वे सरकारी ओहदे वाले किसी पढ़े-लिखे परिवार से नहीं थीं और चूँकि वह लड़की थी, उन्हें कोई नाम नहीं दिया गया था। दूसरी बेटी होने के कारण उन्हें सिर्फ नंबर दो लड़की [ए-या-तो] बुलाया जाता था। बचपन में ही पिता की मौत के कारण उन्हें उनके चाचा ने पाला। एक दिन, जब वह छह साल की थीं, चाचा अपने एक मित्र के साथ खाना खा रहे थे, जिसकी पत्नी गर्भवती थी। खाने की मेज पर ही दोनों मित्रों ने तय किया कि अगर होने वाला बच्चा लड़का हुआ

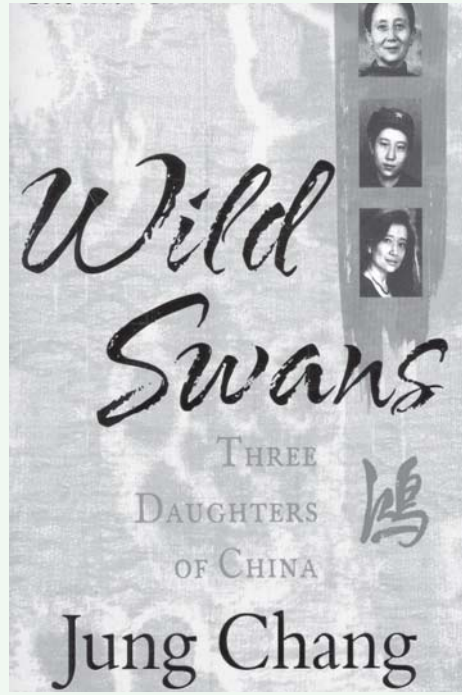
तो उसकी शादी छह साल की भतीजी से कर दी जाएगी। शादी हुई पर शादी से पहले वह दोनों कभी नहीं मिले। दरअसल प्रेम में पड़ना बेहद शर्मनाक घटना मानी जाती थी। शादी एक फ़र्ज, एक धर्म था, दो परिवारों के बीच।

चौदह साल की उम्र में जब मेरे परदादा की शादी हुई तो शादी की पहली रात वह अपनी दुल्हन के कमरे में नहीं गए और माँ के कमरे में सो गए। उनके सोने के बाद उन्हें उठाकर उनकी पत्नी के कमरे में ले जाया गया। वे एक बिगडेल बेटे थे और नहाकर कपड़े पहनने के लिए भी उन्हें किसी की ज़रूरत होती थी पर उनकी पत्नी के अनुसार 'बच्चा रोपना' वह जानते थे और शादी के एक साल के अंदर ही मेरी दादी पैदा हो गई थीं। अपनी माँ से उनका दर्जा बेहतर था; क्योंकि उन्हें एक नाम दिया गया था-यू फ़ांग जिसका मतलब था खुशबूदार फूल।

मेरी दादी वाकई खूबसूरती की जीती-जागती मिसाल थीं। अंडाकार चेहरा, गुलाबी गाल और मुलायम त्वचा। उसके चमकते बालों की काली चोटियाँ उसकी कमर तक पहुँचती थीं। बेहद दुबली पतली, नाज़ुक, खूबसूरत फ़िगर और ढलके हुए कंधे जो आदर्श माने जाते थे।

दादी की सबसे बेशकीमती सम्पत्ति थी-- उसके बाँधे हुए पैर, जिन्हें चीनी में 'सान-त्सुन-जिन-लियन' यानी श्री इंच गोल्डन लिलिज़-तीन इंच के सोने के फूल कहा जाता है। इसका मतलब था कि छोटे-छोटे पैरों से वह ऐसे चलती थी जैसे बसंत की हवा में नाज़ुक कोमल कोंपलें लहरा रही हों। बाँधे हुए पैरों पर धीरे-धीरे, ठुमक-ठुमक कर चलना पुरुषों पर बड़ा उत्तेजक प्रभाव डालता है, ऐसा माना जाता था, खास तौर पर इसलिए भी क्योंकि उसकी दुर्बलता सामने वाले के मन को सुरक्षा देने की भावना से भर देती थी।

जब दादी सिर्फ़ दो साल की थीं, उनके पैरों को बाँध दिया गया था। उनकी माँ, जिनके अपने पैर भी इसी तरह बाँधे गए थे, पहले एक बीस फ़ीट लंबा सफ़ेद कपड़ा उनके पैरों पर लपेट देती थीं, अंगूठे के अलावा पैर की सभी उँगलियों को भीतर की तरफ़ मोड़ते हुए। फिर वे एक बड़ा पत्थर लपेटे हुए पैर के उभरे हुए हिस्से को कुचलने के लिए पैर के ऊपर रखती थीं। दादी दर्द से चीखती थीं और उसे यह क्रिया बंद करने की मिन्नतें करती थीं। तब



उनकी माँ उसका चीखना-चिल्लाना बंद करने के लिए उसके मुँह में कपड़ा ठूस देती थीं। दादी को बार-बार इस तकलीफ़ से गुज़रना पड़ता था।

यह क्रिया बरसों तक दोहराई जाती थी। पैरों की सारी हड्डियाँ कुचल देने के बाद भी पैरों को मोटे कपड़ों में दिन-रात बाँध कर रखना पड़ता था क्योंकि जैसे ही पैरों को कपड़े के बाँधन से आज़ाद किया जाता, वे फ़ौरन बढ़ना शुरू कर देते थे। सालों तक दादी इस अनवरत और असह्य पीड़ा से गुज़रती रहीं। जब दादी अपनी माँ से हाथ जोड़कर पट्टियाँ खोल देने की मिन्नतें करतीं तो उनकी माँ रो-रो कर अपनी मजबूरी का बखान करने लगतीं कि अगर उन्होंने पैरों को खुला छोड़ दिया तो ये पैर उसकी सारी ज़िन्दगी बरबाद कर देंगे और वह उसकी खुशी और उसके भविष्य को ध्यान में रख कर ही ऐसा कर रही है।

कभी-कभी किसी माँ को अपनी बेटी पर तरस आ जाता और वह बाँधी हुई पट्टियाँ खोल देती। वही बेटी बड़े होने पर जब पति के परिवार की अवहेलना और समाज के तिरस्कार का पात्र बनती तो वह अपनी माँ को इतना कमज़ोर होने के लिए कोसती।

उन दिनों, जब भी किसी लड़की की शादी होती, सबसे पहले दूल्हे के परिवार वाले उसके पैरों का मुआयना करते। बड़े पैर यानी औसत साइज़ के पैर देखकर ससुराल वालों को सबके सामने शर्मिंदा

होना पड़ता। घर आई बहू की लम्बी स्कर्ट उठाकर सास पहले उसके पाँव देखती और अगर पाँव चार इंच से लंबे हुए तो वह तिरस्कार की मुद्रा में स्कर्ट को नीचे डालकर, उसे अकेले सब रिश्तेदारों की आलोचना भरी निगाहों का शिकार होने के लिए छोड़कर नाराज़गी में बाहर निकल जाती। वे रिश्तेदार लड़की के पैरों को हिकारत से घूरते और अपनी नाखुशी जाहिर करते हुए उसे अपमानित करने के लिए कुछ भी बड़बड़ाते।

पैरों को बाँधने की इस प्रथा की शुरुआत लगभग एक हजार साल पहले किसी चीनी सम्राट के हरम की किसी रखैल द्वारा हुई थी। छोटे-छोटे पैरों पर बत्तखों की तरह फुदक-फुदक कर चलती हुई औरतें न सिर्फ़ पुरुषों के लिए उत्तेजक मानी जाती थीं बल्कि पुरुष इन छोटे बाँधे पैरों के साथ खेलते हुए उत्तेजित होते थे; क्योंकि वे हमेशा खूबसूरत कसीदेदार जूतों से ढके रहते थे। युवा होने के बाद भी औरतें अपने पैरों की पट्टियाँ खोल नहीं सकती थीं, क्योंकि उन्हें खोलते ही पैर फिर से बढ़ना शुरू कर देते थे। इन पट्टियों को सिर्फ़ थोड़ी देर के लिए रात को सोते समय ढीला कर दिया जाता था और नरम सोल वाले जूते पहन लिए जाते थे। पुरुष कभी इन पैरों को नंगा नहीं देख पाते थे, क्योंकि पट्टियाँ खोलते ही गली हुई त्वचा की सड़ांध चारों ओर दुर्गंध बिखेरती थी।

मुझे अपने बचपन के वे दिन अच्छी तरह याद हैं, जब हम खरीदारी करके बाज़ार से लौटते थे और दादी हमेशा दर्द से कराहती रहती थीं। बाज़ार से लौटते ही वह गरम पानी की देगची में अपने पाँव डुबाकर रखती और लगातार राहत की लंबी-लंबी साँसें भरतीं। फिर वह अपनी चमड़ी में से मरी हुई रूखी त्वचा की पपड़ियाँ उतार-उतार कर फेंकतीं। पैरों के उभरे हुए हिस्से की कुचली हुई हड्डियों में तो दर्द होता ही था, उससे भी ज्यादा तकलीफ़ उन उँगलियों के नाखूनों से होती थी, जिन्हें नीचे की तरफ़ लगातार मोड़ने के कारण उनके नाखून पीछे की ओर बढ़ गए होते थे।

दरअसल मेरी दादी के पैर उन दिनों बाँधे गए थे, जब यह प्रथा समाप्त के चरण पर थी; क्योंकि दादी की छोटी बहन जो १९१७ में पैदा हुई, इस यातना का शिकार होने से बच गई। तब तक इस प्रथा का बहिष्कार किया जा चुका था।





लालित्य ललित नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के हिन्दी विभाग के सहायक संपादक हैं।

आठ कविता संग्रह, एक साक्षात्कार संग्रह, सोलह नवसाक्षरों के लिए पुस्तकें, तीन सह लेखन कविता संग्रह हैं।

ईमेल: lalitmandora@gmail.com,

मोबाइल: ९८६८२३५३९७

सब कुछ वही

लौट आया माँ का बेटा....
माँ की थकान,
माँ का चैन,
माँ का करार,
बहन की राखी,
बेटे का पिता,
बिटिया की हँसी,
पत्नी का सुहाग,
सब लौट आया
और लौट आई खुशियाँ।
फौज में था,
बहादुर था,
खूब तगड़ा निशाना था,
एक बार जो साध लिया
तो वह गया काम से..
लेकिन इस बार लौटा सिपाही
घायल था,
एक बाजू नहीं था,
फिर भी हौसला था वही बुलंद,
जाने को फिर तैयार।
दर्द होता था,
पर उफ़ ना करता था।
पत्नी को एहसास था उसके दर्द का,
महसूस करती थी उसकी पीड़ा।

पर एक कसक थी उसके मन में,
अब सतबीर सिंह उसको
झप्पी कस कर नहीं कर पाएगा,
सतबीर को भी पता था,
बच्चों को भी पता था,
पापा अपनी बुलेट नहीं चला पाएँगे।
लेकिन सतबीर के चेहरे पर तेज था,
अपने देश के प्रति
अपनी निष्ठा का,
अपने समर्पण का।
छबीस जनवरी पर
प्रधान मंत्री ने सम्मानित किया....
गर्व से,
सतबीर सिंह के परिजनों का सीना फूल गया।
उन्हें नाज़ था अपने सुपुत्र पर,
देर तक बजती तालियों की गड़गड़ाहट ने,
सीमा को खुशियों से भर दिया।
उसकी पकड़ अब पहले से कहीं ज्यादा थी,
अपने पति पर,
अपने विश्वास पर।
हर घर में
देश पर मर मिटने का जज्बा लिये,
एक सतबीर हो,
एक सीमा हो,
और प्यारे बच्चे हों.....
जिनका हौंसला सदा अपनों के लिए बना रहे।
०००

एक प्रकाशक!

कहता है प्रकाशक
किताब नहीं बिकती
ऊपर तक बँधा है....
बिना चढ़ावे कुछ भी मुमकिन नहीं,
तीस परसेंट तय है
आप दीजिए
सौ रुपये में तीस
दो सौ सत्तर किताबों का ऑर्डर पक्का
अन्यथा बैठे रहो छाप कर
अपनी बला से.....
कोई प्रदेश हो
सेटिंग सब तरफ तय
कुछ कर ही नहीं सकता
हर तरफ भगवान् जी बैठे हैं,
पहले पूजो फिर पाओ

वर्ना घर को जाओ.....
सुनता रहा उसको
हिम्मत नहीं हुई, पूछूँ,
मेरी किताब मेले में तो आ जाएगी न..
कहता तो
सुनने के लिए
सब्र नहीं था
सो नहीं कहा....
वैसे भी कहाँ कुछ बिकता है,
अब तो
हर तरफ चढ़ावा चढ़ता है,
इंसान बिकता है,
बाज़ार में बिकने को खड़ा है।
क्या लेना पसंद करेंगे
कविता
कहानी
आलोचना
खण्ड काव्य
नई कहानी
उपन्यास
व्यंग्य
रेखाचित्र
संस्मरण
कुछ भी तैयार
तीस परसेंट लाइए,
बिक जाओगे,
अन्यथा रद्दी का रेट बढ़ गया है....
बाज़ार आप ही के लिए है
चुनाव आप का
मंथन करे
बिकना है या खिसकना है ?
सोचता रहा लेखक
आज पशोपेश में है
कि क्या करना है
कैसे करना है
प्रकाशक जा चुका था
मेला करीब था
कैसे होगा
कैसे बिकूँ
कहाँ बिकूँ
कोई तो बताए
रास्ता सुझाए।



कविताएँ



इंजीनियरिंग कॉलेज, बीकानेर में कम्प्यूटर
आपरेटर नरेन्द्र व्यास की रचनाएँ कृत्या,
सृजनगाथा, नवभारत टाइम्स, कुछ मैगजीनों और
समाचार पत्रों में प्रकाशित हुई हैं।
ईमेल: vyasnarenk@gmail.com,
मोबाइल: ०८७६९१४८१३,

नतमस्तक हूँ

मैंने नहीं चखा,
जेठ की दुपहरी में
निराई करते उस व्यक्ति के
माथे से रिसते पसीने को,

मैं नहीं जानता,
पौष की खून जमा देने वाली
बर्फीली क्यामारियों में
घुटनों तक डूबी
पानी में थरथराती बूढ़ी अस्थियों को,

मगर नतमस्तक हूँ,
थाली में सजी
इस रोटी के समक्ष।
०००

उठती है लहर

लहरा रही है
एक छोटी तरंग
सतह पर,
उठती है कभी
अचकचा कर
धैर्य के साथ
यह जानते हुए भी

कि धकेल दी जाएगी पुनः
उमड़ते हुए सागर की
सपाट सतह पर !

फिर भी
उठती है लहर
सागर के पौरुष पर
अक्षरबद्ध कविता सी
अपनी लय में।
०००

एक बूँद

ना भीगे
दरख्त
ना पत्ते
ना ही कहीं
पड़ीं फुहारें।

फकत
एक बूँद
आँख से तेरी
गिरी छलक कर
हो गया मैं
पानी-पानी।
०००

नीले विस्तार में

ना जाने
उसके मन में

क्या आई
कि अचानक
उसने मल दी
नीले विस्तार में
चहुँदिश कालिख !

अब तक है सदमे में
बेचारा चाँद,
उस कालिख में
छुपाता अपना मुख।
०००

नए घरोंदों की नींव में

क्या जरूरत है जानने की
कि कोई चिड़िया
अभी-अभी गई है यहाँ से।
-नई बस्ती में उजड़ा,
अपना पुराना घोंसला छोड़कर-

वो जानती है,
चाहे कितना भी उजड़ जाए
घरोंदा,
नए घरोंदों की नींव में
वह सदैव
लेकर जाती है साथ अपने
कुछ तिनके
पुनर्निमाण के-
और लौटती है
पहले से कहीं ज्यादा मजबूती से
पुनःप्रवास के लिए अपने।
■

Dr. Rajeshvar K. Sharda MD FRCS
Eye Physician and Surgeon

Assistant Clinical Professor (Adjunct)
Department of Surgery, McMaster University



1 Young St., Suite 302, Hamilton On L8N 1T8
P: 905-527-5559 F: 905-527-3883
Email: info@shardaeyesinstitute.com
www.shardaeyesinstitute.com



पूनम 'मनु' गृहिणी हैं। देश के प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित होती हैं। सामाजिक विसंगतियाँ, विद्रूपताएँ जब तड़पाती हैं तो भीतर का आक्रोश कलम पर आ बैठा है। ईमेल-poonam.rana308@gmail.com

इंतजार

निरंतर दुर्बल होते उसके तन और सूखती जिह्वा से लगता है, हर काम के लिए ली गई मिठाई के कारण धमनियों में ज़रूरत से ज्यादा जमी मिठास से अभी उसे मधुमेह तो नहीं पर होने के लक्षण पाए जा रहे हैं...

दिल पर (संसद) आजकल आँत के कीड़ों का निवास है उनके चरित्रों की बसी बस्तियों को देख कर लगता है ... हाथों पैरों के नाखूनों के बढ़ाव में यकायक अवरोध के कारण किसी कीड़े के काटने पर अपना शरीर खुजाने में लगभग असमर्थ है डेड स्किन हटाने वाला भी कोई नहीं बड़ी लाचारी है आजकल ...

कानों में जमी गंदगी के कारण सुरक्षा की पुकार को सुनने में श्रवणेंद्रिय असमर्थ हैं, श्वसन तंत्र भी वर्तमान हालात में

काम करने में नाकाम गर्दन पर रेंगते कीड़ों को सोचने भर से महसूस किया जा सकता है ...

आँखों में दिखती मरघट की सी शांति उसके रुग्ण शरीर और उसमें रहते लोगों की मरती आत्मा को ही नहीं दर्शाती अपितु उस कराह को भी रोकती है, जिसकी वेदना को अनुभूत कर उसके सपूत टूट पड़े थे उन बीमारियों पर जो बाहरी थीं, पर आज उसकी अंदरूनी हालत को देखकर लगता है, उसकी कोख से अब नपुंसक पैदा होते हैं, उसके अंदर घुटी कराह उसकी बेबसी है, नपुंसकों को जनने की वह बेबस वेंटिलेटर पर लेटी न जाने किस सपूत का इंतजार करती है।।

०००

स्वाद

चारों ओर शोर था चीत्कार थी किसकी ... समझने से कोई समझने वाला नहीं था समझा जा सकने वाली चीत्कार भी नहीं जिसकी थी बस वही जानता होगा

रस्सियों पर रस्सियाँ तैयार की जा रही थीं, तैयार रस्सियों से बँधे थे कई सपने, कई अपने बुनने वाला नहीं जानता होगा, यदि जानता तो बाँधता साथ में उम्र, वह उम्र जो आज पूरी तो थी ... पर किसकी नहीं जानती रस्सियाँ और न ही जानना चाहती होंगी उनका काम जानना नहीं ... बाँधना है बँध कर कब खुला कोई खुलकर कोई बँधा कब।

एक के ऊपर एक दो लंबे बाँसो पर रख

बाँधे जा रहे थे बाँस . छोटे-छोटे बड़े अरमानों के साथ कि इसके बाद जीवन का अमृत बस मिलने ही वाला है।

स्त्रियाँ आज रुदाली थीं पर ... पुरुषों के झुंड थोड़ी दूर होने पर भी घूँघट उठा आँखों से ही पढ़ कह लेती थीं हर दस मिनट के अंतराल पर कि देर कितनी ?

जवान बच्चों में अकुलाहट थी यह जानने की कि वसीयत में क्या छोड़ गए दादा जी और पुरुष शाम को सेलिब्रेट करने वाली पार्टी को लेकर उत्साहित ज्यादा थे कि अपने अंतिम कर्त्तव्य को निभाने का आनंद उनका चरम पर था, नहीं बता सका कोई हाँ, कुछ स्त्रियाँ और कुछ पुरुष ज़रूर जानते होंगे इस आनंद का स्वाद पर मैंने कभी नहीं चखा और न ही चाहत कोई..

सफ़ेद कपड़ों की तह में जो देह थी किसने कितनी सिली सिलने वाले से पूछूँगी आज, क्योंकि देह के साथ स्वाहा हो जाएगा वह सबूत जो सुई की नोकों से बना है, सुई का क्या आज इसके हाथ है कल उसके हाथ।



सूचना

'हिन्दी चेतना' पत्रिका अब कैंनेडा के साथ-साथ भारत से भी प्रकाशित हो रही है। पत्रिका के सदस्य बनना चाहते हैं या पत्रिका के एक-दो अंक पढ़ने के लिए मँगवाना चाहते हैं तो आप संपर्क कर सकते हैं-

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

मोबाइल : 9313727493

पंकज सुबीर

मोबाइल : 9977855399

कविताएँ



शार्दुला नोगजा (ज्ञा) ने बी.ई. (विद्युत आभियांत्रिकी) कोय से किया। एर्लांगन, जर्मनी से एम.एस. (कंप्यूटेशनल आभियांत्रिकी) किया। मई 2005 से सिंगापुर में कार्यरत। कविताएँ ई-पत्रिकाओं में प्रकाशित।
ईमेल: shar_j_n@yahoo.com

कौन जाने ?

प्रीत के वो पल अनूठे
हाय रूठे!
और आधे चाँद से टूटे बतासे
भींच मुठ्ठी
हो गई गुमसुम
पुजारन रात
आधी बात!
बात आधी
जैसे आधा गीत
बिसरा मीत
होती लुप्त कोमल रीत!
रीत जैसे
गाँव की बाली डगर पर
गाय का धूलि उड़ना
तुलसी-चौरा, आरती और
साँझ का दीया जलाना!
सोचो तो ये कुछ नहीं हैं
और सोचो तो,
जो है सो-
बस ये ही हैं!
कौन जाने ?
कौन जाने
बाँसुरी अब भी बजाते हो ?



छिपा गीतों में मेरा नाम
तुम अब तक सजाते हो?
मुँडेरों पे जो मन की
बैठ जाएँ याद के पंछी
कौन जाने
नेह के दाने चुगाते हो!
कि घबराकर
उड़ते हो ?
और पूनम चाँद रातें ?
और पूनम रात,
तुम कैसे बिताते हो?
अलावों में जलाते हो ?
कि नदियों में बहाते हो ?
कौन जाने!

०००

ओ उषा! अब यूँ न सकुचा

ओ उषा! अब यूँ न सकुचा
आ, उतर के आँगना आ
सत्य होने की ललक में
स्वप्न कोई जागता है
स्पर्श तेरा माँगता है..

रातरानी की लयों से
नील नभ के पनघटों से
झर रही सुषमा अनूठी
रत्न दिनकर बाँटता है
कृपण तम को डाँटता है.....

‘मैं लखूँ!’ हठ कर पड़ा है
रंग मुखड़े का उड़ा है
गाँव की पगडंडियों से
चाँद तुझको ताकता है
रूप तेरा आँकता है.....

ले प्रभा से पद गुलाबी
खग-मृगों से आपाधापी
तोल पर, मन का पखेरू
दृष्टि सीमा लाँघता है
संग पी का माँगता है.....

ओ उषा! अब यूँ न सकुचा
आ, उतर के आँगना आ
सत्य होने की ललक में
स्वप्न कोई जागता है
स्पर्श तेरा माँगता है..।







Tel: 416-677-0106
Fax: 416-233-8617

Satinder Pal Singh Sidhwan
Producer & Director
www.punjabilehran.com
info@punjabilehran.com

कविताएँ



शोभा रस्तोगी का, दिन अपने लिए (लघुकथा संग्रह) है और विश्व की पत्रिकाओं तथा अंतर्जालीय पत्रिकाओं में लघुकथा, कविता, कहानी, लेख, समीक्षा आदि प्रकाशित होते हैं।
ईमेल:
shobharastogishobha@gmail.com.,
मोबाइल:९६५०२६७२७७

मृग और स्त्री

अपने अंदर उगते कच्चे वसंत से
महकता है हिरन
सुगंध और फ़ैले
सुमन और खिले
तब तक तुम्हारी बौराई नज़रें
चीर देती हैं उसे।
झपट लेती हैं रक्त रंजित दाने
चिथड़ा-चिथड़ा शरीर
कतरा-कतरा खून
जंगल सा हूँकारता
कुल्लाँचे भरता
सजीव सौन्दर्य
बन जाता है शव।
अपनी ही कस्तूरी से अभिशप्त मृग की
बेज़ार आँखों में झलकती है
नारी की परछाईं
समानान्तर चलने लगते हैं
मृग और स्त्री।
०००

शून्य

सावनी तीज
दिलाती है याद झूलों की,
मैं चाहती हूँ झूलना
कि दिखे मुझे
वसुधा हरी-भरी
फ़ैली फली
गगन और खुला, नीचा
पाटना चाहती हूँ
धरा-नभ के मध्य दूरियों का आँकड़ा,
यूँ तो झूला करती थी कभी
घर पड़ोस के चाचा-मामा की
बाँहों के झूले पे,
किन्तु अब वे झूले
बढ़ाते हैं पींग
तेज और तेज
ऊपर और ऊपर
मेरा अंतस खदबदाने लगता है..
और बाहर
निर्मित होता जाता है
एक बड़ा शून्य।
०००

अतृप्त ख्वाहिशें

आबद्ध तुम्हारे घेरे में
चाहा कि सुनूँ अपना नाम,
तुम्हारी साँसों की
आरोह-अवरोह में
वो राग सुनूँ,
जो चटका दे असंख्य कलियाँ,
वो भोर जी लूँ
जो उष्मित हो रोशन सुबह से,
वो फ़ुहार नहा लूँ
जो स्पंदित हो नेह लहर से,
लगाए जो इस तरफ़ कान
ठिठक गई
मेरे नाम के आले तो कोरे ही थे,
गैर स्त्री नाम भी रजिस्टर्ड नहीं हुआ था,
थीं तो नारी देह की अतृप्त ख्वाहिशें
जो ऊँचे और ऊँचे टकोर रही थीं।
०००

छोड़ना

तुमने सदा मुझे
अपनी ज़रूरत माना
और मैंने
तुम्हें अपना प्रेम।
एक अदद फ़ासला होता है
ज़रूरत और स्नेह के मध्य
सच बताओ---
तुम्हें कभी नहीं लगा
कि तुम मेरे लिए
कुछ गैर ज़रूरी चीज़ें छोड़ दो।
मैंने छोड़ दी जबकि
ज़िन्दगी तुम्हारे लिए।
०००

जीत

धूल धूमरित आँधियाँ
अड़ गई मेरे रास्ते,
मैंने बनाया अपना बादल
छेड़ दी जंग हठी आँधियों के खिलाफ़,
बुहारती रही धूल
पोंछती रही मस्तक
स्वेद बिंदुओं से लथपथ
देखो...गर्द घन छँट रहे हैं.
चू रही हैं बूँदें
मेरे बादलों से
सुहावने अर्थ में बदल रहा है मौसम
मैं नहा रही हूँ बूँद-बूँद
जीत रही हूँ बादल-बादल।
०००

देखते हो चाँद

तुम देखते हो चाँद अंजुरि में भरकर
उछाल देते हो एक चुम्बन,
जो लहरता बलखाता
उड़ान भरता है शशि पथ पर
फिर वापस हो लेता है
और सज जाता है ठीक बीचों-बीच
मेरी पेशानी के।



कविताएँ



अनिल कुमार पुरोहित टोरोंटे में सरकारी सेवा में हैं। स्वभाव से संकोची होने के कारण उनका पहला संकलन 'शहर की पगडंडी' आने में काफी समय लगा। वैश्वीकरण के दौर में कवि मन नए समीकरण और नए मूल्यों की नींव तलाश रहा है।

ईमेल: pakere@gmail.com

स्याह साए

कठपुतली से चलते देखा मैंने
कदम से कदम मिलाते
कोई आहट नहीं
सन्नाटे में और सन्नाट घोलते।
रोशनी के छिपते ही
लिपट गए मुझसे
स्याह साए-
धीरे-धीरे साँसों में घुलते
और रग-रग में मेरे रम रहे।

चिंगारियाँ रुक-रुक कर उठतीं
तराशती इन्हें
पर रंगों को चुरा
फिर छिप जाते अँधेरों में।

सूरज चाँद तारों के इर्द-गिर्द
मंडराते फिरते रहते
आकाशगंगा से थिरकते
क्षितिज के इस छोर से उस छोर तक।

दीवारों, रोशनदान से रिसते

चिमनियों से उतरते
दरवाजे, खिड़कियों तक
अधिकार जमा रखा
बिखरे हुए अब हर कोने में।
०००

हिमशैल

हिमशैल एक
यायावर सा, अनंत सागर में
जाने कब से बहे चले जा रहा।
अगिनत तूफानों संग
इसने भी ली मदमस्त हिलोरें।
तपती, झुलसती गर्मी
ठिठुरती,
कँपकँपाती सर्दी
नहीं कर सकी विचलित इसे।
बस एक लकीर बुलबुलों की
बनाता जाता-पर
अगले ही पल-
सागर उन्हें मिटता जाता।
जूझ एक अजीब सी
सागर के संग
नित नए सूरज
नित नए रंग।
इसी सागर ने अपने ही अन्दर
छिपा रखा है अस्तित्व इसका
और यह
शनैः-शनैः घुलता जाता
इसी सागर की गोद।
०००

सच का झूठ

कैसा समाँ यहाँ
तैर रहा झूठ,
बन बर्फीला पहाड़,
सच के सागर में।
मंज़र साफ़ नज़र आ रहा,
सज रही इमारत झूठ की
सच की नींव पर।

सजी-सँवरी बगीचा दिख रही
खिलखिलाते फूल से-
झूठ चहुँ ओर
मज़बूत सच की जड़ों पर।

नहीं सरहता सच को
न बूझता, बस कतराता-हर कोई
देख सुहाना झूठ
मचल उठते, झूमते मगन
जैसे देखा कोई उन्मुक्त गगन।

जो समझ लेते-
नाम सच का देते
अछूता, परित्यक्त,
अनदेखा-
झूठ में ढाल देते।
अंधे लोग, धर-अधूरा ज्ञान
भीड़ में, चलते अपनी पंगु चाल
सच से त्रस्त,
झूठ की कोख ढूँढ़ते।



RBC
Dominion
Securities

Tel : (905) 764-3582
Fax : (905) 764-7324
1800-268-6959

Professional Wealth Management Since

Hira Joshi, CFP

Vice President & Investment Advisor

RBC Dominion Securities Inc.

260 East Beaver Creek Road
Suite 500
Richmond Hill, Ontario L4B 3M3
Hira.Joshi@rbc.com



ममता किरण, देश-विदेश, अंतर्राष्ट्रीय एवं अखिल भारतीय कवि सम्मेलनों की लोकप्रिय कवयित्री हैं। कविता संग्रह 'वृक्ष था हरा भरा' 'राजेंद्र वोहरा स्मृति सम्मान' से सम्मानित। हिंदी की लगभग सभी प्रतिष्ठित राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं तथा हिंदी वेब पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। आकाशवाणी, दूरदर्शन एवं निजी टी वी चैनलों से कविताओं का प्रसारण।
ईमेल: mamtakiran9@gmail.com,
मोबाइल: ९८९१३८४९१९

हसरत

गाँव के मकान की
भंडरिया में
एक अरसे से रखीं
परातें, भगौने, कड़ाही, कलछुल, चमचे
सबको भनक लग गई है
छोटे भैया की बिटिया का ब्याह होने को है।

अब तो हम भी पीछे नहीं रहेंगे
कुाही ने कलछुल से
कलछुल ने परात से,
परात ने चमचे से
चमचे ने भगौने से कहा.....
खूब रौनक होगी घर में
सारे रिश्तेदार जो आएँगे
हम भी खूब खटर-पटर नाचेंगे
कभी नानी
कभी बुआ, कभी चाची

तो कभी मौसी के हाथों....

व्यंजनों की कल्पना करने लगे हैं
सभी बर्तन
कर रहे हैं आपस में
खुशी-खुशी चटर-पटर
याद कर रहे हैं
बड़े भैया की बिटिया का ब्याह
हफ्तों पहले से जमा हुए रिश्तेदार
धूम-धाम, चहल-पहल
बिटिया की बिदाई
और साथ ही अपनी भी बिदाई
तब से हम बंद हैं इस भंडरिया में
कड़ाही ने उदास हो कर कहा.

खबर लाई है कलछुल
छोटे भैया की बिटिया का ब्याह हो भी गया
शहर के एक बड़े से फार्म हाउस से
रिश्तेदार मेहमानों की तरह आए
और वहीं से लौट भी गए..

यूँ तो इस बात से खुश हैं
परातें, भगौने, कड़ाही, कलछुल, चमचे
कि हो गया छोटे भैया की बिटिया का ब्याह
पर अफसोस इस बात का है
कि न तो घर में हुई रौनक.
न जमा हुए रिश्तेदार.
न ही उन्हें मिला मौक़ा
ब्याह में शामिल होने का।
०००

पत्थर

घर से पैदल स्कूल जाते हुए
अक्सर ही रास्ते में पड़े
किसी छोटे से पत्थर के टुकड़े को
बना लेती अपना साथी
और उसे पाँव के अँगूठे से उछालते हुए
उसकी सीध में आगे बढ़ते हुए
कब पहुँच जाती स्कूल
पता ही नहीं चलता..

बड़ी हुई,

पढ़े-सुने लैला-मजनू के किस्से
ये भी
कि मजनू को पत्थरों से
मार-मार कर मार डाला
डर बैठा ऐसा
ज्यों कैद हो
राजकुमारी की जान
जंगल के राक्षस के पास।

ब्याह हुआ,
जब कभी दाल में निकल आता
छोटा सा पत्थर
पूरा घर सर पर उठा लिया जाता ऐसे
ज्यों कड़कती हो बिजली आसमान से
फिर पूजती पत्थर के देवता को
याद आ जाता किस्सा
जो दादी बुआ को सुनाती ...
कि अहल्या को
उनके पति ने श्राप दे
कर दिया था पत्थर।

घर बना और जब जड़ गए
उसमें खूबसूरत पत्थर
तो लगा मिल रहा हो उलाहना
कि अब मारती रहे
इन्हीं पत्थरों पर अपना सर
पर ये लगा ही नहीं, सच
पत्थर क्या जड़े
सबके दिल ही हो गए पत्थर के
पसर गई पूरे घर में एक औपचारिकता।
घर ही क्या
मोहल्ले का भी तो यही आलम है
कौन किसके पड़ोस में है नहीं पता
एक दूसरे की बगल से गुजर जाते हैं ऐसे
जैसे बुत बने हो पत्थर के।
इंसान ही नहीं शब्द भी
पहले जो मार करते थे तीर की तरह
अब पड़े रहते हैं पत्थर से।
धीरे-धीरे घिरता जा रहा है अँधेरा चौतरफ़ा
और आम आदमी ...
बस ...
देख रहा है पत्थर की तरह।



दोहे



रघुविन्द्र यादव बाबूजी का भारतमित्र (शोध और साहित्य की अर्द्धवार्षिक पत्रिका) के संपादक है। नागफनी के फूल, वक्त करेगा फैसला (दोहा संग्रह), मुझमें संत कबीर (कुंडलिया छंद संग्रह), बोलता आईना और अपनी-अपनी पीड़ा (लघुकथा संग्रह), कामयाबी की यात्रा (प्रेरक निबंध संग्रह) सहित कुल ११ कृतियाँ।

ईमेल :

raghuvinderyadav@gmail.com,

फोन: ०९४१६३२०९९९

तन से शहरी हो गए, पर मन में है गाँव।
भूल न पाए आज तक, बरगद वाली छाँव ॥

भूख पेट की ले गई, जिनको घर से दूर।
जड़ से कटकर हो गए, वे बैँधुआ मजदूर ॥

मँहगी रोटी दाल है, मँहंगा बहुत मकान।
फिर सस्ते में क्यों बिके, मानव का ईमान?

बुनकर नंगा फिर रहा, भूखा मरे किसान।
नारे फिर भी लग रहे, मेरा देश महान ॥

दौलत उसके पास है, अपने पास ज़मीर।
वक्त करेगा फैसला, सच्चा कौन अमीर ॥

मंदिर में माँ आरती, मस्जिद बीच अजान।
माँ से बढ़कर है नहीं, दुनिया में भगवान ॥

विश्व सुन्दरी कर रही, दिन-दिन छोटा चीर।
धनिया व्याकुल है यहाँ, कैसे ढके शरीर ॥

बेटी नंगी नाचती, खुश होते माँ-बाप।
बदन दिखाना है नहीं, अब भारत में पाप ॥

नारी पर होने लगे, पग-पग अत्याचार।
'सेफ' नहीं है कोख में, दुर्गा की अवतार ॥

झूठ मलाई खा रहा, छल के सिर पर ताज।
सत्य मगर है आज भी, रोटी को मुहताज ॥

गए ज़माने त्याग के, शेष रह गया भोग।
लाशों को भी लूटते, हैं कलयुग के लोग ॥

लुटी किसी की आबरू, मरा किसी का मर्द।
पीड़ादायक है बहुत, बँटवारे का दर्द ॥

अपने ही शोषण करें, कौन बैँधाये धीर।
सभी डालना चाहते, औरत को जंजीर ॥

साँप नेवलों में बढ़ा, जब से मेल-मिलाप।
दोनों दल खुशहाल हैं, करता देश विलाप ॥

साँप-नेवलों ने किया, समझौता चुपचाप।
पाँच साल हम लूट लें, पाँच साल फिर आप ॥

जनहित की परवाह नहीं, नहीं लोक की लाज।
कौओं की सरकार का, करें समर्थन बाज ॥

पूर्ण सुरक्षा दे रहे, भेड़ों को सरकार।
मुस्तैदी से भेड़िये, उठा रहे हैं भार ॥

देवी अंधी न्याय की, बहरा है कानून।
भ्रष्ट व्यवस्था चूसती, निर्भय होकर खून ॥

भ्रष्ट व्यवस्था खेलती, तरह-तरह के खेल।
बड़े चोर हैं मौज में, छोटे काटें जेल ॥

सलमा पाले श्याम को, गंगा जी रहमान।
कहें गर्व से हम सभी, मेरा देश महान ॥

भारत से सद्भाव की, मिलती नहीं मिसाल।
केशव की लीला करें, अब्दुल और बिलाल ॥

न्याय धर्म की बात कर, भूखा मरे फ़क़ीर।
तंत्र-मंत्र गुर सीख कर, बनते दुष्ट अमीर ॥

कहते जो उपदेश में, माया को दो त्याग।
रखते हैं वे संत भी, माया से अनुराग ॥

गाड़ी बंगले चेलियाँ, अरबों की जागीर।
ये सब जिसके पास हैं, वे ही आज फ़क़ीर ॥

याद सताए गाँव की, झर-झर बहते नैन।
रोटी तो दी शहर ने, छीन लिया पर चैन ॥

उनके हित बनते रहे, आये साल विधान।
भूख गरीबी क्रूर से, मरते रहे किसान ॥

नदिया अब कैसे करे, सागर पर विश्वास।
कतरा-कतरा पी गया, बुझी न फिर भी प्यास ॥

किया उजाला रातभर, सिर पर धर कर आग।
भोर हुए फुटपाथ पर, फेंक गया निर्भाग ॥

उभर रही है देश की, खौफनाक तस्वीर।
भाव ज़मीनों के बढ़े, सस्ते हुए ज़मीर ॥

धन की खातिर बेचता, आये दिन ईमान।
गिरने की सीमा सभी, लाँघ गया इंसान ॥

दो रोटी के वास्ते, मरता था जो रोज।
मरने पर उसके हुआ, देशी घी का भोज ॥

रिशतों को यूँ तोड़ते, जैसे कच्चा सूत।
बँटवारा माँ-बाप का, करने लगे कपूत ॥

पानी को पानी कहे, कहे क्षीर को क्षीर।
मिला नहीं इस दौर में, ढूँँ कहीं कबीर ॥

सत्य कहे यारी गई, स्पष्ट कहे सम्बन्ध।
अब तो केवल रह गए, स्वार्थ के अनुबंध ॥



गीत



ओरेकल नामक कंपनी में सीनियर इंजीनियर के रूप में कार्यरत अर्चना पंडा के अपराजिता, सृजनी, प्रवासिनी के बोल, धूप-गंध-चाँदनी काव्य संकलन हैं। अमेरिका की लोकप्रिय मंचीय कवयित्री हैं। ईमेल: panda_archana@yahoo.com

मन बाग-बाग होता है

तू जब-जब भी मुस्काए मन बाग-बाग होता है।
तन-वंशी में मधुवंती सा राग-राग होता है।।

कैसे चित्रों की रेखा
के भीतर रंग भरें हम।
मन करता है हर सीमा
तोड़ें, जब प्यार करें हम।
तन में पावस गाता है मन आग-आग होता है।
तन-वंशी में मधुवंती सा राग-राग होता है।।

तेरी बातों से मेरी
हर इक रचना रच जाए।
मैं गीत-गाज़ल जब गाऊँ
जग भी मेरे संग जाए।
तन में जगे मधुमास और मन फाग-फाग होता है।
तन-वंशी में मधुवंती सा राग-राग होता है।।

प्रेम शब्द का मुझको अब
सच्चा उपयोग मिला है।
पुण्य किये कुछ होंगे जो
तुमसे संयोग मिला है।
तन संगम मन वृंदावन जीवन प्रयाग होता है।
तन-वंशी में मधुवंती सा राग-राग होता है।।

०००



बाजे मृदंग जैसे

बजे जल-तरंग, सजे अंग-अंग, छाया अनंग जैसे,
मन का वो हाल, तबले की ताल, बाजे मृदंग जैसे।

सुख के हिंडोले, मनवा ये डोले, चिंताएँ सारी भूले,
जीवन निसार, तुझपे है यार, मुझे एक बार छू ले।
वीणा के तार, गूँजे सितार, मन है मलंग जैसे,
बजे जल-तरंग, सजे अंग-अंग, छाया अनंग जैसे।

हर एक थाप, करती है जाप, प्रिय मेरे प्यार तुम हो,
मुरली की तान, तुम मेरे प्राण, जीवन का सार तुम हो।
डमरू के बोल, बजे झाँझ-ढोल, चढ़ती तरंग जैसे,
बजे जल-तरंग, सजे अंग-अंग, छाया अनंग जैसे।

बस तेरी प्रीत, जाऊँ मैं जीत, मेरे मन के मीत सुन ले,
बजने दे शंख, खुलने दे पंख, आ प्रणय गीत चुन ले।
सुर गीत साज, लगते हैं आज, बढ़ती उमंग जैसे,
बजे जल-तरंग, सजे अंग-अंग, छाया अनंग जैसे।

□

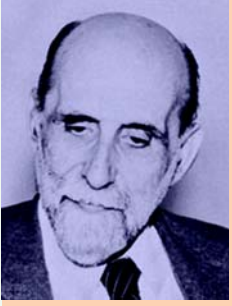


शिवना प्रकाशन

विश्व पुस्तक मेला, प्रगति मैदान, नई दिल्ली में 14 फरवरी से 22 फरवरी तक शिवना प्रकाशन-हिन्दी चेतना के स्टॉल पर आपका स्वागत है।

भारतीय तथा प्रवासी हिंदी साहित्य का अग्रणी प्रकाशन संस्थान। उच्च गुणवत्ता की पुस्तकें प्रकाशित करने में सबसे आगे। साहित्यिक पत्र पत्रिकाओं तथा इंटरनेट पर पुस्तकों के प्रचार प्रसार में सबसे आगे। भव्य समारोहों में पुस्तकों का विमोचन देश के शीर्ष साहित्यकारों के हाथों। पुस्तकों के आवरण तथा इनले डिज़ाइन शीर्ष चित्रकारों की तूलिका से। टंकण तथा वर्तनी की शून्य अशुद्धियाँ। सुप्रसिद्ध समीक्षाकारों तथा आलोचकों से पुस्तकों की समीक्षा। विभिन्न साहित्यिक सम्मानों के लिये पुस्तकों की अनुशंसा करना।

Shivna Prakashan, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001 India, Email: shivna.prakashan@gmail.com
Phone: +91-7562-405545, +91-7562-695918, Mobile: +91-9977855399



स्पेनिश कवि खुआन रामोन खिमेनेज

परिचय: २४ दिसंबर, १८८१ में पैदा हुए स्पेनिश कवि खुआन रामोन खिमेनेज का सबसे महत्वपूर्ण योगदान आधुनिक कविता में 'शुद्ध कविता' का विचार था। विशाल साहित्य रचने वाले खुआन रामोन खिमेनेज को १९५६ में साहित्य के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। उनकी बेहतरीन प्रमुख रचनाएँ हैं—स्मिरिचुअल सोनेटस; पिएद्रा य सिलो; पोएजिया ओं प्रोजा य वर्सो; वोसेज द मी कोपल और आनिमाल द फोंदो। २९ मई, १९५८ में उनकी मृत्यु हो गई।



अनुवाद: सरिता शर्मा

मैं वापस नहीं आऊँगा

और शांत और खामोश गुनगुनी सी रात
दुनिया को लोरी सुनाएगी
अपने अकेले चाँद की चाँदनी में।
मेरा शरीर नहीं होगा,
और चौपट खुली खिड़की से,
एक ताजा झोंका आकर
मेरी आत्मा के बारे में पूछेगा।
मैं नहीं जानता
किसी को मेरी दोहरी अनुपस्थिति का

इंतजार है या नहीं,
या दुलारते बिलखते लोगों में से
कौन मेरी स्मृति को चूमेगा।
फिर भी, तारे और फूल रहेंगे,
आहें और उम्मीदें होंगी,
पेड़ों की छाया तले रास्तों में
प्रेम पनपता रहेगा।
और वह पियानो
इस शान्त रात की तरह बजता रहेगा,
और मेरी खिड़की के चौखटे में,
उसे ध्यान मगन हो सुनने वाला कोई न होगा।
०००

किसको पता है क्या हो रहा है

हर घंटे के उस ओर
कितनी बार सूरज उगा
वहाँ, पहाड़ के पीछे !
कितनी ही बार
दूर उमड़ता चमकता बादल
बन गया सुनहरा गर्जन !
यह गुलाब विष था।
उस तलवार ने जन्म दिया।
मैंने फूलों के मैदान की कल्पना की थी
एक सड़क के खत्म होने पर,
और खुद को दलदल में धँसा पाया।
मैं मानव की महानता के बारे में सोच रहा था,
और मैंने खुद को परमात्मा पाया।
०००

मैं मैं नहीं हूँ

मैं वह हूँ जो
मेरे साथ चल रहा है,
जिसे मैं नहीं देख सकता हूँ।
और यदा-कदा जिसके यहाँ मैं जाता हूँ,
और जिसे कभी-कभी मैं भूल जाता हूँ ;
मैं बात करता हूँ,
तो चुप रहता है वह,
जो एक
मैं नफरत करता हूँ
तब क्षमाशील और प्यारा बना जाता है,
मैं घर के अंदर हूँ
तो वह बाहर चल देता है,
मैं मर जाऊँगा
तो खड़ा रहेगा वह।
०००

कविता

उस व्याकुल बालक सी मैं
हाथ पकड़ कर घसीटते हैं वे जिसे
दुनिया के त्योहार से।
अफसोस कि मेरी आँखें लगी रहती हैं
चीजों पर...

और कितने दुःख की बात है
वे उनसे दूर ले जाते हैं।
०००

मोगुए

मोगुए, माँ और भाइयो।
साफ-सुथरा और गर्मीला, घर।
आहा क्या धूप है कितना आराम
दूधिया होते कब्रिस्तान में !
पल भर में, प्यार अकेला पड़ जाता है।
समुद्र का अस्तित्व नहीं रहता; अंगूर के
खेत, लालिमायुक्त और समतल,
शून्य पर चमकती तेज रौशनी सी है दुनिया
और सारहीन शून्य पर चमकती हुई रौशनी।
यहाँ बहुत छला गया हूँ मैं!
सबसे बढ़िया बात यहाँ मर जाना है,
बस वही छुटकारा है, जो मैं शिद्दत से चाहता हूँ,
जो सूर्यास्त में मिल जाता है।
०००

जीवन

जिसे मैं सोचता था
मुझ पर यश का द्वार बंद होना,
दरअसल इस स्पष्टता की ओर
खुलता हुआ दरवाजा था; अनाम देश।
कोई भी नष्ट नहीं कर सकता,
एक के बाद एक सदा सत्य की ओर,
खुलते जाने वाले दरवाजों वाले इस रास्ते को;
अनुमान से परे जीवन!
०००

सूर्यास्त

आह, सोने के जाने की अद्भुत ध्वनि,
सोने का अब अनंत काल में जाना ;
कितना दुखद है हमारे लिए सुनना
सोने का अनंत काल में जाना
यह खामोशी बनी रहेगी
उसके सोने के बिना
जो अनंत काल के लिए प्रस्थान कर रहा है!



ऊँचाई

ऊँचे पहाड़ पर,
पेड़ नहीं लगते,
पौधे नहीं उगते,

न घास ही जमती है।
जमती है सिर्फ बर्फ,
जो, कफ़न की तरह सफ़ेद और,
मौत की तरह ठंडी होती है।
खेलती, खिलखिलती नदी,
जिसका रूप धारण कर,
अपने भाग्य पर बूँद- बूँद रोती है।

ऐसी ऊँचाई,
जिसका परस
पानी को पत्थर कर दे,
ऐसी ऊँचाई
जिसका दरस हीन भाव भर दे,

अभिनंदन की अधिकारी है,
आरोहियों के लिये आमंत्रण है,
उस पर झंड़े गाड़े जा सकते हैं,
किन्तु कोई गौरैया,
वहाँ नीड़ नहीं बना सकती,
ना कोई थका-माँदा बटोही,
उसकी छाँव में पलभर
पलक ही झपका सकता है।

सच्चाई यह है कि
केवल ऊँचाई ही काफ़ी नहीं होती,
सबसे अलग-थलग,
परिवेश से पृथक्,
अपनों से कटा-बँटा,
शून्य में अकेला खड़ा होना,
पहाड़ की महानता नहीं,
मजबूरी है।

ऊँचाई और गहराई में
आकाश-पाताल की दूरी है।
जो जितना ऊँचा,
उतना एकाकी होता है,
हर भार को स्वयं ढोता है,
चेहरे पर मुस्कानें चिपका,
मन ही मन रोता है।

ज़रूरी यह है कि
ऊँचाई के साथ विस्तार भी हो,
जिससे मनुष्य,
टूँठ-सा खड़ा न रहे,
औरों से घुले-मिले,
किसी को साथ ले,
किसी के संग चले।
भीड़ में खो जाना,
यादों में डूब जाना,
स्वयं को भूल जाना,
अस्तित्व को अर्थ,
जीवन को सुगंध देता है।

धरती को बौनों की नहीं,
ऊँचे कद के इंसानों की ज़रूरत है।
इतने ऊँचे कि आसमान छू लें,
नये नक्षत्रों में प्रतिभा की बीज बो लें,
किन्तु इतने ऊँचे भी नहीं,
कि पाँव तले दूब ही न जमे,
कोई काँटा न चुभे,
कोई कली न खिले।

न वसंत हो,
न पतझड़,
हो सिर्फ ऊँचाई का अंधड़,
मात्र अकेलेपन का सत्राटा।
मेरे प्रभु!
मुझे इतनी ऊँचाई कभी मत देना,
गैरों को गले न लगा सकूँ,
इतनी रुखाई कभी मत देना।

□



भारत रत्न
अटल बिहारी वाजपेयी

चाँद शेरी
महेन्द्र कुमार अग्रवाल
डॉ.शम्भुनाथ तिवारी

मुल्क तूफ़ाने-बला की ज़द में हैं
दिल सियासत दान का मसनद में हैं
अब मदारी का तमाशा छोड़ कर
आज कल वो आदमी संसद में है
एकता का तो दिलों में है मुक़ाम
वो कलश में है न वो गुम्बद में है
ज़िन्दगी भर ख़ून से सींचा जिसे
वो शजर मेरा निगाहे-बद में है
फिर है ख़तरे में वतन की आबरू
फिर बड़ी साज़िश कोई सरहद में है
एक जुगनू भी नहीं आता नज़र
यह अंधेरा किस बुरे मक़सद में है
चिलचिलाती धूप में 'शेरी' ख़याल
हट के मंज़िल से किसी बरगद में है

कहीं आकाश पर बादल नहीं था
घटा की आँख में काजल नहीं था
ये ज़हरीले शजर नफ़रत की बेलें
यहाँ पहले तो ये जंगल नहीं था
नज़र कोसों से आता था हमें जो
वो अब उस गाँव में पीपल नहीं था
फटे अखबार पर सोए हुआँ को
खयाले-बिस्तरे-मखमल नहीं था
थी सन्दल सी बजाहिर उसकी सूरत
मगर सीरत का वो सन्दल नहीं था
अभी था हौसला उसका सलामत
परिन्दा इस क्रदर घायल नहीं था
भिगोया उसको 'शेरी' आँसुओं ने
वो भीगा दूध से आँचल नहीं था

चाँद शेरी

के 30, आई पी आई ए
रोड नंबर 1 कोटा 5
मो.- 9829098530



निकलती है खुशी कतरा के अनजानी सी लगती है
हमारा दिल भी सहरा सा है वीरानी सी लगती है
इनायत है वो अपना हाथ सर पर फेर देते हैं
बुर्जगों की यही आदत मेहरबानी सी लगती है
मैं गीली रेत में लड़ते झगड़ते घर बनाता था
मगर अब याद करता हूँ तो नादानी सी लगती है
सुबह से शाम भगती दौड़ती रखती थी सर पे दिन
वही माँ आजकल सबको परेशानी सी लगती है
हमारी ज़िन्दगी दुनिया समझती है सितारों सी
हमें ये आँख में ठहरे हुए पानी सी लगती है

ये ग़ज़ल है इसका जादू सीखिए लहजा उठे
किस तरह मिसरे के उपर दूसरा मिसरा उठे
पीटकर बैठे हो अपने शब्द से अपनी कहन
हर बहर में किस तरह से क्राफ़िया तनहा उठे
आइये अब आप भी पढ़ लीजिए सब हैं यहाँ
कौन है महफिल में शायर कौन क्या परदा उठे
धूप की अठखेलियाँ हों या शरारत में हवा
अब समुन्दर की सतह से फिर कोई कतरा उठे
इसलिए मिलता रहा हँस हँस के मैं तुमसे सदा
जो लगा रखा है चेहरे पर नया चेहरा उठे
आस्तीनों में रहे जो हौसला बनकर मेरा
मेरे फ़न को देखकर सब आज फन फैला उठ

महेन्द्र कुमार अग्रवाल

बी.एम.के.मेडीकल स्टोर, सदर बाजार,
शिवपुरी (म.प्र.) 473 551
मो.- 9425766485

सोचकर मुझको ये हैरानी बहुत है
दुश्मनी अपनों ने ही ठानी बहुत है
जानकर मैं अबतलक अनजान-सा हूँ
उसने मुझपर मुट्ठियाँ तानी बहुत है
दे गया है ग़म ज़माने भर का लेकिन
अब उसे क्योंकर पशोमानी बहुत है
चाहता है दिल से पर कहता नहीं क्यों
ये अदा जो भी हो लासानी बहुत है
दोस्ती का भी शिला मुझको मिला क्या
खाक मैंने उम्र भर छानी बहुत है
ज़िंदगी में फूल भी काँटे भी बेशक
चंद ख़ुशियाँ तो परीशानी बहुत है
ज़िंदगी पर क्या गुमाँ कोई करेगा
जब यकीनन ज़िंदगी फ़ानी बहुत है
आ सके आँखों में गर दो बूँद पानी
ज़िंदगी के बस यही मानी बहुत है

नहीं कुछ भी बताना चाहता है
भला वह क्या छुपाना चाहता है
तिज़ारत की है जिसने आँसुओं की
वही ख़ुद मुस्कुराना चाहता है
किया है खाक जिसने चमन को वो
मुकम्मल आशियाना चाहता है
हथेली पर सजाकर एक कतरा
समंदर वह बनाना चाहता है
ज़माना काश,हो उसके सरीखा
यही दिल से दीवाना चाहता है
ज़रा सी बात है बस रौशनी की
मगर वह घर जलाना चाहता है
ज़ुबाँ से कुछ न बोलूँ जुल्म सहकर
यही मुझसे ज़माना चाहता है
लगीं कहने यहाँ खामोशियाँ भी
ज़ुबाँ तक कुछ तो आना चाहता है

डॉ. शम्भुनाथ तिवारी

एसोशिएट प्रोफ़ेसर (हिंदी)
अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी,
अलीगढ़(भारत)



सेदोका

सेदोका
डॉ. भावना कुँआर

०००

चाकू की नोक
पेड़ों के सीने पर
दे जाती कुछ नाम,
ठहरा वक्त
पेड़ भी हैं, नाम भी;
पर, जीवन है कहाँ?

०००

भीगे हों पंख
धूप से माँग लूँ मैं
थोड़ी गर्मी उधार,
काटे हैं पंख
जीवन का सागर
कैसे करूँ मैं पार !

०००

मन का कोना
खुशबू नहाया-सा
सुध बिसराया-सा
न जाने कैसे
भाँप गया ज़माना
पड़ा सब गँवाना।

०००

छू गया कोई
गहराई से मन
खुले सब बंधन
सोई पड़ी थी
बरसों से कहीं जो
जागी आज चुभन।

०००

गर्म है हवा
छीन ले गया कौन
ठंडे नीम की छाँव?
बसता था जो
साँसों में सबके ही
गुम हो गया गाँव।



हाइकु

हाइकु
गुंजन अग्रवाल

०००

चीर के धुंध
आँगन आ पसरी
प्यारी-सी धूप।

०००

संस्कारी बीज
रोपे कोमल मन
हँसे भविष्य।

०००

अदृश्य स्वप्न
मासूम परवाज
झुका गगन।

०००

कोमल मन
सिन्धु-सी मोह माया
डूबे-उबरे।

०००

बोला शैशव-
संसारि चकाचौंध
खोजे वैभव।

०००

लेते जनम
नित नए सपने
बालक-मन।

०००

आज भी ज़िंदा-
मासूम बचपन
खँगालो मन।

०००

जी भर जिया
बुझने से पहले
नन्हा-सा दीया।

०००

नेह की बाती
अँधेरे को समेट
बाहें फैलाती।



हाइकु
सुनीता अग्रवाल

०००

गाँठ थी जुड़ी
टूट-टूट बिखरे
माला से मोती।

०००

चल रे मना
छँट जायेगा शीघ्र
कोहरा घना।

०००

रोई जो दूब
आँसू पोंछने आई
स्नेहिल धूप।

०००

रोती गुड़िया
किताबो में खो गई
नन्ही परियाँ।

०००

'ज़िन्दा हूँ अभी'-
मरघट में हँसी
दूब नन्हीं-सी।

०००

लौटेगा घर
नभ नापता पंछी
साँझ प्रहर।

०००

जीवित रिश्ते
लड़ते-झगड़ते,
मुर्दा न बोले।

०००

उधड़े रिश्ते
जतन से सिलती
जोड़ दिखते।

०००

चहकी भोर
गूँज उठी दिशाएँ
सन्नाटे रूठे।



भारत जाते समय सोच रही थी, क्या दिल्ली में अपनी फ़ेवॉरिट लेखिका नासिरा शर्मा से मिल सकूंगी, जो भी हो प्रयास तो ज़रूर करूंगी। नासिरा जी द्वारा 'आदम की बायीं पसली' शीर्षक से एक कहानी-संग्रह तैयार किया जा रहा है, उस सिलसिले में अमरीका से उनके साथ संपर्क होता रहा था। उनकी किताबों को पढ़ते हुए मन में उनकी एक छवि बन गई थी, क्या वह वैसी ही होंगी जैसी मेरे मन में उनकी तस्वीर बनी है।

अनेकों पुरस्कारों और सम्मानों से अलंकृत नासिरा शर्मा ने हिन्दी-साहित्य की लगभग सभी विधाओं में लिख कर हिन्दी-साहित्य को समृद्ध किया है। उनके लेखन पर बहुत लिखा गया है, ढेर सारे साक्षात्कार लिये गए हैं, पर मुझे तो उस संवेदनशील नासिरा शर्मा से एक अनौपचारिक भेंट करनी थी, उन्हें पास से देखने की चाहत थी। जो दूसरी औरतों के दुःख-दर्द को इस शिद्दत के साथ महसूस करती हैं कि वो दर्द उनका अपना बन जाता है। ऐसी औरतों में साहस और जाग्रति लाने के लिए उन्होंने अपनी कलम की तलवार बनाई है। अपने पात्रों में वह खुद को जीती हैं, इसीलिए कहानियों के पात्रों के साथ पाठकों का सहज आत्मसातीकरण हो जाता है।

दिल्ली में उनका फ़ोन नंबर लगाते ही उनकी आवाज़ सुनाई दी थी-

'मैं नासिरा शर्मा बोल रही हूँ।'

'नासिरा जी, मैं पुष्पा सक्सेना, आपसे मिलना चाहती हूँ।'

'मुझे कल बाहर जाना है अगर आज आ सकती हो, तो आ जाओ।'

कुछ विशेष व्यस्तताओं के कारण उस दिन ना जा पाने का दुःख रहा, पर मेरी मनोकामना चौबीस नवम्बर को पूरी हो गई।

'आपने तो बड़ा लंबा इन्तज़ार करवा दिया। आ जाइए।' बड़ी आत्मीयता से नासिरा जी बोलीं।

'आपके लंच का समय हो रहा है, मेरी वजह से आपको देर तो नहीं हो जाएगी?'

'अरे यार, हम लेखकों के बीच इस तरह के तकल्लुफ नहीं चलते, आ जाओ।'

यकीन नहीं हो रहा था कि एक महान लेखिका पहली ही बार में इस तरह अपनेपन से बात करेंगी। उनके इस सहज उत्तर ने मेरे सारे संशय दूर कर दिए। निश्चय ही एक औरत के दर्द को इतनी तीव्रता से महसूस करने वाली सुहृदय लेखिका से ऐसे अपनत्वपूर्ण उत्तर की ही आशा की जा सकती है...

मुझे उनका घर ढूँढ़ने में तकलीफ़ ना हो इसलिए अपने घर का पता अच्छी तरह से समझा दिया, उनके बताए पते पर सामने ही शंकर का ढाबा दिख गया। नासिरा जी का घर कहीं नज़र नहीं आ रहा था। जैसे ही किसी से पूछा-

'जो कहानियाँ लिखती हैं, उनका घर कहाँ है?'

बस सभी के चेहरों पर उनकी पहचान की चमक आ गई। एक व्यक्ति तत्परता से उनके घर तक पहुँचाने को साथ आ गया। एक गैलरी पार करते ही खुले दरवाजे पर हरी घास के लॉन में सलवार-सूट पहने कुर्सी पर बैठी नासिरा जी दिख गई। चारों तरफ रंग-बिरंगे फूलों वाले गमले सजे हुए थे।

'वाह, नासिरा जी आपका घर तो नन्दन कानन जैसा है।' अनायास ही कह बैठीं।

'जे एन यू (जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय) में हरे पेड़-पौधों के बीच रहती थी, उसे छोड़ते हुए मन उदास था। अब यहाँ भी वही माहौल बनाने की कोशिश है। अभी जब आप आई तो एक पौधा लगा रही थी, ये ज़मीन पहले ही ले रखी थी, इसलिए यहीं घर बना लिया। वैसे जल-बोर्ड वालों के कारण



ईमेल: pushpasaxena@hotmail.com
संपर्क: 13819 NE 37TH PL,
Bellevue, WA

कुछ तकलीफ़ हुई, पर अब इस दीवार के भीतर हम शोरगुल से दूर, खुश हैं।' लॉन को घेरती एक ऊँची दीवार पर मेरी दृष्टि निबद्ध थी।

इलाहाबाद स्थित 'साहित्य-भण्डार' द्वारा ३० नवम्बर को 'नासिरा शर्मा और इलाहाबाद' विषय पर आयोजित होने वाली गोष्ठी के लिए मुझे भी निमंत्रण मिला था, पर २८ नवम्बर को अमरीका वापिसी का टिकट होने के कारण गोष्ठी में सम्मिलित न हो पाने की मेरी विवशता थी। इलाहाबाद मेरी भी साँसों में बसता है, पर नासिरा जी के इलाहाबाद के वो अनुभव सुनने की आकांक्षा होनी स्वाभाविक ही थी, जिनमें इलाहाबाद जिया गया है।

'नासिरा जी आपके पात्र बहुत वास्तविक लगते हैं, क्या ये आपके परिवेश का परिणाम हैं?'

'पुष्पा जी, आप ठीक कहती हैं। मेरे घर के आस-पास हिन्दू-मुसलमान सब इकट्ठे रहते थे। उनके दुःख-सुख मैंने देखे सुने और महसूस किए। इसलिए मेरे लेखन में उनमें से कई पात्र मेरी कहानियों में उतर आए। शायद आम इंसानों के भोगे दुःख-सुख परिचित से लगते हैं और इसी कारण उनके साथ पाठकों का आत्मसातीकरण संभव हो जाता है और वे पात्र वास्तविक लगते हैं। यह सच है मेरे परिवेश और आसपास के माहौल से बहुत से पात्र मेरी कहानियों में आए हैं।' बड़ी सादगी से उन्होंने सच बयान कर दिया।

'आप अपने शुरू के जीवन के बारे में कुछ बताएँगी?'

'मेरा जन्म एस सी बासु रोड पर हुआ था, ये जीरो रोड़ और प्रेम टाकीज के पास है। यह एक शानदार मोहल्ला था। यहाँ बहुत बड़ी-बड़ी कोठियाँ हुआ करती थीं। सेकण्ड क्लास तक मैं संत एंथोनी स्कूल में पढ़ी। उसके बाद हमीदिया स्कूल में पढ़ी हूँ। इलाहाबाद में मेरा स्कूल पत्थर गली में था। जहाँ ये स्कूल था, वहाँ कोतवाल साहब की एक शानदार कोठी थी। स्कूल खुलने के पहले कुछ दिनों तक इस कोठी में हमारा संयुक्त परिवार किराए पर रहता था। जब वहाँ स्कूल खुला तो आसपास के इलाकों से लड़कियाँ बैलगाड़ी में स्कूल आने लगीं थीं। मैं रिकशा से स्कूल जाती थी।

पुष्पा जी, उस ज़माने में इलाहाबाद में मुस्लिम जागृति और आन्दोलन का युग था। हमारे स्कूल की इसमें महत्वपूर्ण भूमिका थी। अच्छे और बड़े घरों की लड़कियाँ भी इसमें सम्मिलित होती थीं.....



वर्ष 2014 का आनंद सागर स्मृति कथाक्रम सम्मान वरिष्ठ और चर्चित कथाकार नासिरा शर्मा को दिए जाने का निर्णय लिया गया है। (हिन्दी चेतना की टीम की ओर से बधाई!)

हमारे स्कूल का माहौल बड़ा अच्छा था। यहाँ लड़कियों के लिए डिबेट, कहानी और दूसरी बहुत सी प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती थीं। मुझे अपनी हिन्दी की टीचर (क्षमा करें मैं नाम भूल गई हूँ) बहुत अच्छी लगती थीं। उनसे मैं बहुत प्रभावित थी। उर्दू विषय भी अच्छा लगता था। पहले उर्दू में लिखती थी फिर हिन्दी में लिखना शुरू कर दिया।

'आपको अपने जीवन में कोई बाधाएँ तो नहीं आईं?'

'पहले शर्मा सरनेम को ले कर कुछ मुश्किलें थीं, पर बाद में सब स्वीकार कर लिया गया। अगर टीवी की बात करें तो जब से पाकिस्तानी सीरियल आने लगे हैं, हिन्दी सीरियल पीछे नजर आते हैं।' नासिरा जी मेरा इशारा समझ गई थीं।

'आपने ईरान की क्रांति पर किताब लिखी है, क्या आप ईरान किसी विशेष उद्देश्य से गई थीं?'

'नहीं वहाँ जाना, एक इत्तेफाक मानती हूँ, पर बहुत दिल दहलाने वाली यादें हैं। शायद मेरी 'इकोज ऑफ़ ईरानियन रिवोल्यूशन' पढ़ी होगी। इसके अलावा तीन साल इंग्लैण्ड में रही, पर वहाँ अपने को अजनबी महसूस करती रही।'

'जी हाँ किताब के कुछ अंश किसी पत्रिका में

पढ़े थे, पूरी किताब पढ़नी है। नासिरा जी, आप भी तो कहीं पढ़ा रही थीं?'

'पहले जामिया में कुछ दिन पढ़ाया फिर छोड़ दिया।'

मेरे मन में आया कह दूँ, अच्छा हुआ वरना हमें इतनी अच्छी कहानियाँ और उपन्यास पढ़ने को कैसे मिलते। अपने मन को रोक कर एक व्यक्तिगत प्रश्न पूछ बैठी-'शर्मा जी से आप कहाँ मिली थीं?'

'उनसे तो इलाहाबाद में ही मिली थी। वह ज्यॉग्रैफी में गोल्डमेडलिस्ट थे, टॉपर थे। पूरा नाम रामचंद्र शर्मा था।' बात कहते हुए चेहरे पर ज़रा सा गर्व छलक आया था।

'क्या, यानी आर सी शर्मा? अरे वह तो इलाहाबाद यूनीवर्सिटी में हमारे ज्यॉग्रैफी के प्रोफेसर थे। जब इलाहाबाद यूनीवर्सिटी छोड़ कर वह जे एन यू ज्वाइन करने गए तो हम सब स्टूडेंट्स को इतने अच्छे प्रोफेसर का जाना बहुत खला था। शर्मा जी ने मेरा इंडिया का पेपर करेक्ट किया था और बहुत तारीफ़ की थी, अब तो नासिरा जी आप हमारी बहुत अपनी हो गईं' मेरे मन को उत्साहित वाणी मिल गई।

'इलाहाबाद में शायद उनका किसी के साथ रोमान्स था?' उनके चेहरे पर हल्की शरारतभरी मुस्कान थी।

'ये तो मुझे नहीं पता, एक बात बताइए शर्मा जी के ना रहने से ज़िंदगी में जो कमी आ गई, उस अकेलेपन के विषय में क्या कहेंगी?'

'सच तो यही है, उनका अभाव बहुत खलता है। वह मेरी हर बात में सहायता करते थे, राय देते थे। कभी-कभी उनकी कमी बेहद खलती है। सीने की जकड़न की तकलीफ़ थी, ठीक हो गए घर आ गए, पर अचानक न जाने क्या हुआ कि वह हमेशा के लिए चले गए।' चेहरे पर उदासी की छाया सी तैर गई।

शायद इसीलिए मूड बदलने के लिए उन्होंने मेरे लिए चाय लाने के निर्देश दे कर बात बदल दी। सामने मेज़ पर चाय के साथ समोसे और एक विशेष प्रकार की रोटी जैसी कोई चीज़ थी। नासिरा जी ने बड़े प्यार से आग्रह किया-

'यह रोटी टेस्ट कर के देखिए, बच्चों ने मैदे के साथ कुछ एक्सपेरिमेंट किया है। ये समोसे लखनऊ के हैं, लखनऊ एयरपोर्ट से लिये हैं।'

'समोसे तो इलाहाबाद में हरी के भी बहुत

मशहूर हैं, अमिताभ बच्चन ने अपनी बेटी की शादी में इलाहाबाद से माँगवाए थे। पर आपके ये लखनऊ वाले समोसे सच में बहुत टेस्टी हैं, शायद इनमें दाल की फिलिंग है।' मैंने अनुमान लगाया।

'हो सकता है, मुझे तो ये समोसे ज्यादा पसंद हैं।'

'आजकल नया क्या लिख रही हैं?'

'अभी किताब घर से मेरी नई किताब 'कागज़ की नाव' आई है, आपको एक प्रति दूंगी।' बात खत्म करती नासिरा जी ने तुरंत ही घर में काम करने वालों को किताब लाने के निर्देश दे दिए थे।

'वाह, आपके हाथों से 'कागज़ की नाव' मिलना, मेरा तो बहुत बड़ा सौभाग्य होगा।' खुशी मेरे चहरे पर खिल आई थी।

'मुझे आपका प्रवास में लिखी गई कहानियों का संकलन एन बी टी ने भेजा है, अभी पढ़ नहीं पाई हूँ, पढ़ कर कुछ लिखूँगी भी।'

बाहर से टैक्सी ड्राइवर का संदेश मिला, उसके घर में कोई एमरजेंसी है, मुझे जल्दी लौटने को कह रहा था। मुझे 'कागज़ की नाव' की प्रतीक्षा थी।

परिचारकों द्वारा बहुत खोजने पर भी पता लगा किताब की एक भी प्रति घर में उपलब्ध नहीं है। नासिरा जी विचलित हो उठीं। 'ऐसा कैसे हो सकता है, किताब की एक भी प्रति नहीं है। मेरे कमरे की अलमारी में देखो, शायद वहाँ मिलेगी।'

यह मेरा दुर्भाग्य ही था कि नासिरा जी द्वारा उनके हाथों से 'कागज़ की नाव' पाने से वंचित रही।

'आप परेशान ना हों मैं 'कागज़ की नाव' जरूर माँग लूँगी। ये नई किताब तो पढ़नी ही है।'

'अभी आपको अपनी ये दो किताबें 'अजनबी जज़ीरा' तथा 'जब समय दोहरा रहा हो इतिहास' दे रही हूँ।' नासिरा जी जैसे मेरी निराशा दूर कर रही थीं।

नासिरा जी द्वारा पुस्तकों पर कुछ लिखने के लिए पेन निकालने के प्रयास में जब मैंने अपना पेन देना चाहा तो बोलीं-

'नहीं, अपनी किताबों पर मैं अपने ही पेन से लिखती हूँ।'

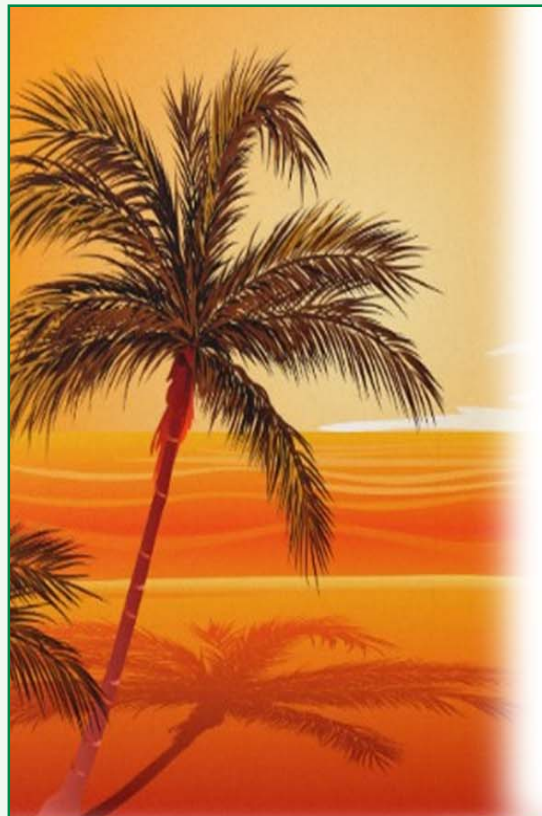
नासिरा जी की कलम से लिखे उन शब्दों ने

पुस्तकों को कितना महत्वपूर्ण बना दिया, शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकती। 'कागज़ की नाव' न मिल पाने की निराशा इन पुस्तकों ने पल भर में दूर कर दी। चलते-चलते पूछा-

'नासिरा जी, अगर इस अनौपचारिक भेंट को किसी पत्रिका में प्रकाशित करा दूँ तो आपको कोई आपत्ति तो नहीं होगी?'

'जी नहीं।'

नासिरा जी की किताबों को सीने से लगाए उनसे विदा ज़रूर ली, पर मन में उनके साथ और बहुत सी बातें करने की आकांक्षा बनी रही। इतना ज़रूर कहूँगी कि औरतों के दर्द को बेहद गहराई से महसूस करने वाली नासिरा जी के पास एक ऐसा दिल है जो कुछ देर में ही किसी अजनबी को अपना बना ले। अपनी इसी क्वालिटी के कारण उनकी रचनाएँ अनगिनत पाठकों के दिल को गहराई से छूती हैं। भविष्य में उनसे फिर-फिर मिलने की आकांक्षा के साथ नासिरा जी के स्वस्थ-दीर्घ और सक्रिय जीवन की मंगल कामना करती हूँ।



PRIYAS

INDIAN GROCERIES

1661, Denision Street,
Unit# 15

(Denision Centre)
MARKHAM, ONTARIO.

L3R 6E4

Tel: (905) 944-1229, Fax : (905) 415-0091

न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी

हरीश नवल

बचपन में एक गाना सुनते था, 'मधुबन में राधिका नाची रे।' कितनी भली थी तब राधिका जो बिना किसी हील ओ, हुज्जत के नाच लेती थी। वह मधुबन 'मधु' नामक राक्षस के नाम से था जो कालान्तर में 'वृन्दावन' कहलाने लगा था। कहते हैं मधु के नाम से ही 'मधुरा' नगरी थी जो 'मथुरा' में बदल गई। 'मधु' का वध किया श्रीकृष्ण ने। श्रीकृष्ण की ही प्रेयसी, प्रेरणा थीं राधा जो खुद भी नाचती थी और श्रीकृष्ण को भी नचा लेती थी। जिसे 'रास' का नाम दिया गया।

लगभग साढ़े पाँच हजार साल पहले द्वापर-युग की वह राधा एक शालीन राधा थी, तभी बिना किसी शर्त के कर्मरत रहती थी।

कलियुग की राधा नाचना जानती है, नाच सकती है लेकिन सशर्त नाचती है। किसी भी दफ्तर में चले जाइए, एक 'फ़ाइल' इस टेबल से उस टेबल तक बिना शर्त के जा नहीं सकती। राधा एक प्रतीक है। राधा एक संकेत है। राधा एक इरादा है। यहा राधा-राधा ही क्यों ? कुछ भी हो सकती है। राधा क्लर्क है, राधा अफसर है, राधा प्रशासक है, राधा छात्रा है, राधा अध्यापिका है, राधा इंजीनियर है, राधा डाक्टर है। राधा लेखिका है यानी राधा बहुत कुछ है

मिलिए पहले उस राधा से जिसे कहा गया कि भई, तुम्हें नाचना है, तुम्हारी नियुक्ति इसीलिए हुई है कि तुम नाचों। वह तैयार है; लेकिन उसकी एक शर्त है कि पहले नौ मन तेल लाओ फिर नाचूँगी। नाचने का तेल से क्या सम्बन्ध, यह शोध का विषय है। ब्यूटी पार्लर जाना होता, मसाज करानी होती तो भी बात थी, तब भी नौ मन तेल से पार्लर के लिए पाँच साल तक का स्टॉक हो जाता। घुँघरू माँगती तो वाजिब था। विशेष लहँगा, चूनरी, आभूषण चाहती तो बात थी लेकिन उसे तो चाहिए तेल वह भी नौ मन। जब यह कहावत बनी तब मीट्रिक प्रणाली का माप-तौल नहीं था, वह तो आया लगभग पैंतीस-चालीस साल पहले। यानि यह तेल वाली राधा की घटना कम से कम चालीस-पचास साल पहले की तो है ही। तेल उस समय एकत्र किया गया हो; लेकिन तौल में नौ मन नहीं हुआ होगा, लिहाजा राधा नहीं नाची होगी। अब राधा होती है कुछ ऐसी-

राधा दफ्तर मे काम करती है। साढ़े आठ बजे घर का काम निपट बस मे बैठ या खड़े होकर दफ्तर आती है, काम करती है, साढ़े पाँच बजे की चार्टर्ड पकड़ कर लौटती है। घर जाते ही जुट जाती है, दस



65, साक्षरा अपार्टमेंट्स
ए-3, पश्चिम विहार
नई दिल्ली 110063
मोबाइल 9818988225

बज जाते हैं - सीरियल देखते-देखते सो जाती है। रोज़ सोचती है अमुक वस्तु लेनी थी, अमुक मुन्नु के लिए जरूरी है, शनिवार, रविवार कपड़े धोते-धोते, फर्श रगड़ते-रगड़ते बीत जाता है, जब समय मिलता है बजट बनाती है - पति भी कागज पेन लिए हिसाब करते हैं। दस जरूरी वस्तुओं में से आधी या पौनी ही ले सकते हैं, दोनों थक जाते हैं- न उतने पैसे होंगे न अमुक जरूरी वस्तुएँ आएँगी - यदि बजट अनूकूल बन जाता संभव था खुशी के मारे राधा नाच उठती, झूम उठती पर - नहीं झूम सकी - नहीं नाच सकी....

राधा अफसर है। बी.ए. किया, एम.ए. किया, 'टाप' किया, प्रतियोगिता परीक्षा में बैठी-अफसर बनी। नेक इरादे हैं, बहुत कुछ कर गुजरने की तमन्ना है। राधा आफिस सँभालती है- अरमान से काम में लगती है। यही वक्त सही निर्णय लेती है, निर्णयों को अमल में लाने के लिए कटिबद्ध है लेकिन शीघ्र ही कटि डोल जाती है, कटि लचक जाती है, कटि टूट जाती है। निर्णयों का स्वागत तो होता है। निर्णयों की अभ्यर्थना तो होती है। निर्णयों की फेहरिस्त मंजूर तो होती है - लेकिन अमल में लाने के लिए नहीं, अमल में लाने के लिए वक्त नहीं, रोक लग जाती है, टोक लग जाती है। कह दिया जाता है जब ये इतना हो जाएगा, या उतना हो जाएगा तब निर्णयों को अमल में लाया जाएगा.....

लेकिन नौ मन तेल एकत्र नहीं होता, और राधा नाच नहीं पाती।

राधा विद्यार्थी है। अच्छे कॉलेज में दाखिला मिला है। कोर्स भी अच्छा है। राधा टाइम टेबल के अनुसार कक्षाओं में जाती है- लेकिन कभी उसके अतिरिक्त कोई अन्य विद्यार्थी कक्षा में नहीं, कभी प्राध्यापक महीनों तक नदारद, कभी प्राध्यापक हाज़िर तो छात्र नेता हड़ताल पर कभी सब मौजूद पर कर्मचारी असहयोग पर, वे कमरे का ताला नहीं खोलते। कक्षाएँ लगती ही नहीं - कोर्स रह गया, परीक्षाएँ टली नहीं, राधा की चली नहीं, जो कुछ अपने बल पर कर सकती थी किया लेकिन कहा माना जिया, उसका कौन-सा अरमान पूरा किया ? नौ मन तेल के अभाव में राधा नहीं नाच पाई। थर्ड डिवीज़न ही आई।

राधा अध्यापिका है। शिक्षा के प्रति समर्पित है। बरसों से बरसों तक एक सी चाल-ढाल वही ढाक के तीन पात। वही पाठ्यक्रम नीरस, उबारू।

वही परीक्षा पद्धति अवैज्ञानिक, असन्तुलित। सुबह होती है शाम होती है टीचिंग यूँ ही तमाम होती है। कैसे नाचे वह, कैसे खुशियाँ मनाए। वह भी उसी मशीन का एक घिसा हुआ पुर्जा हो जाती है। समर्पण-भाव, मिलने वाले वेतनमान तक ही सीमित हो जाता है, नौ तो बहुत दूर, एक सेर तेल भी नहीं हो पाता। नाचना भूल जाती है।

राधा इंजीनियर है। नव निर्माण के लिए उत्सुक है। उत्फुल है। पुल बनाना है, भवन बनाना है सड़कें बनानी हैं - ठोस, मज़बूत, दीर्घ-जीवी।

योजनाएँ बनाती है। मंजूरी पाती है। ठेके के लिए निविदा निकलवाती है। स्टेटमेंट तैयार करती है। लेकिन नहीं जानती कैसे, किसको, क्यों ठेका मिलता है। पुल टूटता है, भवन गिरता है, सड़क पथरा जाती है..... और पथरा जाती है राधा। गिर जाती है। राधा टूट जाती है। वह गवेषणा नहीं कर पाती है। कार्यपूर्ति सही न होने पर ईमानदारी की राह पर चलने के कारण वह 'सस्पेंड' हो जाती है। पुनर्नियुक्ति के लिए दी गई शर्तें साढ़े पाँच हजार साल वाली राधा के लिए नहीं हैं, नवीन राधा के लिए हैं, नौ मन तेल कहाँ है? राधा अपनी बनाई गई सड़क पर आ जाती है।

राधा डॉक्टर है। राधा पूरी फीस देकर रातों-रातों जाग कर डॉक्टर बनी है। जनता अस्पताल में जनता सेवार्थ लगी है। सही जाँच करती है। सही दवाएँ लिखती है। परची बढ़ती है। दवाएँ आती हैं। मरीज नियम से खाते हैं। राधा हैरान है। परेशान है। फर्क नहीं पड़ता। मरीज नीरोग नहीं होता। राधा का मन ज़ार-ज़ार रोता। दवाएँ बदलों खूब जाँचो। विशेष पुस्तकें बाँचो। नई परची नई दवा। लेकिन सब हवा। दवाएँ नकली हैं। दाम उनके पर असली है। सही बात। सही दवा। सही जाँच-राधा के लिए नौ मन तेल है, नहीं आया। राधा नहीं नाचेगी। यूँ ही आहिस्ता-आहिस्ता उम्र के पड़ाव पर पहुँच जाएगी। रिटायर हो जाएगी।

....राधा लेखिका है। सच्चा लिखेगी सच्चा बताएगी। नहीं जानती कि ऐसा कर गच्चा खाएगी। उसके साथ वहीं होता है जो क्लर्क राधा के साथ हुआ, जो अफसर राधा के साथ हुआ। जो विद्यार्थी राधा के साथ हुआ। जो अध्यापिका राधा के साथ हुआ। जो इंजीनियर राधा के साथ हुआ, जो डॉक्टर राधा के साथ हुआ। लिखते-लिखते कुछ सही न हुआ अलबत्ता उसकी अपनी लेखनी टूट गई।

दूसरी दी गई लेखनी से लिखने लगी लेखिका राधा

....और भी बहुत सी राधाएँ हैं। सब पर आती बाधाएँ हैं। सब उदास सब निराश। नहीं नाचती सो नहीं नाचतीं।

दरअसल यह राधा का सही रूप था जो विद्रूप है वही आजकल मुखरित है, जो विसंगत है, उसी की संगत है। संवेदना की जगह विडम्बना है।

आज की रक्षक राधा भक्षक हो सकती है। जो दफ्तर में काम करने जाती है; लेकिन करती नहीं। तभी करेगी, जब उसकी शर्तें मान ली जाएगी यानी पदोन्नति बिना कुछ किए होती रहे। वेतनमान बढ़ते रहें। भत्ते पर भत्ते मिलते रहें। जितना माँगा उतना नहीं मिलता भत्ता। राधा काम को देती धता। नहीं नाचेगी जब तक नौ मन तेल न होगा।

अफसर राधा अफसरी के नशे में है। वह केवल सुविधाएँ गिनती है - काम करने के लिए उसके चन्द आदेश हैं जो पल-पल बदलने वाले आवेश हैं।

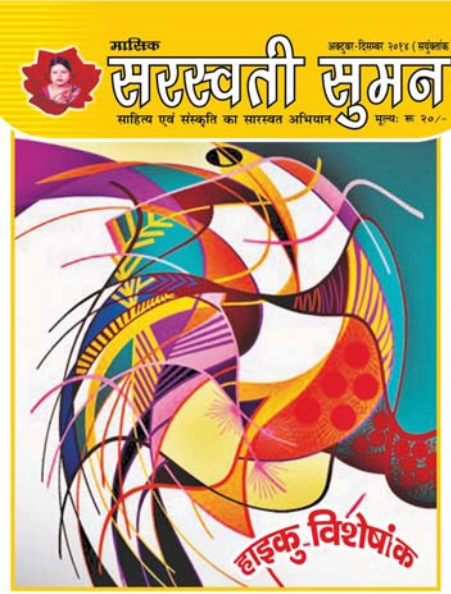
विद्यार्थी राधा अपने अधिकारों के प्रति ज़रूरत से ज़्यादा सचेत है। पढ़ने के मामले में अचेत है। कर्तव्य किस चिड़िया का नाम है, नहीं जानती। वह छात्र चेतना की समर्थक है। शिक्षक की क्लास उसके लिए बक-बक है।

अध्यापिका राधा जहाँ है बस वहीं है। उसे आगे नहीं बढ़ना। किताबें नहीं पढ़ना। वह परमानेंट है, उसे फिक्र नहीं कि रिज़ल्ट कितने परसेंट है। बिल्डिंग नई बनेगी - कोर्स पूरा करा देगी। नई बिल्डिंग बननी नहीं है, उसे पढ़ाना नहीं है। इंजीनियर राधा तभी साथ देगी नवनिर्माण में जब ठेकेदार लाभांश में उसका साथ देगा। देश, समाज, जन के लिए ज़रूर काम करेगी। जब उसकी तिजोरी भरे-उसकी तिजोरी बेहद बड़ी है, तीस साल में भरेगी - तब देश के लिए, समाज के लिए, जन के लिए ज़रूर नाचेगी।

कुछ-कुछ ऐसा ही है डॉक्टर राधा के साथ, कुछ-कुछ ऐसा ही है लेखिका राधा के साथ.....।

सब नाच सकती हैं पर सभी के अपने-अपने नौ मन तेल हैं। जिनके तेल का तौल पूरा हो जाता है, वे नाच देती हैं और उनका तो भगवान् ही मालिक है जो बिना तेल के भी नाचती फिरती हैं।





‘सरस्वती सुमन’ का हाइकु विशेषांक

डॉ. ज्योत्सना शर्मा

जिस प्रकार जल की धारा मार्ग में आने वाले पाषाण खण्डों को पार कर, और भी निर्मल होती हुई निरंतर प्रवाहित होती रहती है ;वैसे ही हिन्दी हाइकु की अनवरत यात्रा भी अनेक अवरोधों को पार कर और उत्कृष्टता प्राप्त करती हुई अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर है। ‘सरस्वती सुमन’ का हिन्दी हाइकु विशेषांक इसका सुन्दर निदर्शन है। अक्टूबर-दिसंबर २०१४ का यह संयुक्तांक सुन्दर साज-सज्जा, आवरण पृष्ठ और उत्कृष्ट पठनीय सामग्री के साथ सुन्दर कलेवर में अतिसुन्दर आत्मा का सुयोग है। अंक में वर्णित विषय ‘अनुभूति’ और ‘अभिव्यक्ति’ दो अनुभागों में विभक्त है। अनुभूति में प्रथम हिंदी हाइकु के आधारशिला रूप वरिष्ठ हाइकुकारों के चयनित उत्कृष्ट हाइकु संकलित हैं।

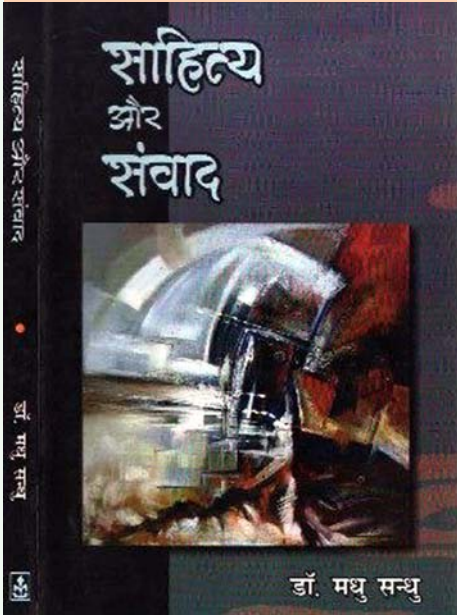
उपरांत, प्रवाह-१ शीर्षक के अंतर्गत नए-पुराने ऐसे हाइकुकारों के हाइकु संकलित हैं, जो हिन्दी हाइकु की विरासत को भली प्रकार सँभाल कर और अधिक समृद्ध बनाने में लगे हुए हैं। देशांतर-में भारत से बाहर बसे हाइकुकार हैं, जो विदेश में रहकर भी हिन्दी और हिन्दी-हाइकु के प्रति निष्ठावान् रहते हुए सतत साधना रत हैं। प्रवाह-२ में अन्य हाइकुकारों के हाइकु संकलित हैं। नए-पुराने कुछ हाइकुकारों के हाइकु विचारों का समावेश भी किया गया है।

‘अभिव्यक्ति’ शीर्षक से द्वितीय अनुभाग में हाइकु के शिल्प-विधान तथा विषय-वैविध्य पर सारगर्भित, शोधपरक लेख संकलित हैं। ‘हाइकु:शिल्प पक्ष’-डॉ. भगवतशरण अग्रवाल जी का आलेख विविध भ्रांतियों का निवारण करता हुआ हाइकु विषयक एक सशक्त दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, तो नलिनीकांत जी का आलेख हाइकु काव्य की विश्व-भूमिका को निरूपित करता है। डॉ. सुधा गुप्ता जी ने ‘हिन्दी हाइकु में प्रकृति’ शीर्षक लेख में ‘प्रकृति’ और ‘हाइकु’ दोनों को

परिभाषित करते हुए हिन्दी हाइकु में प्रकृति के अत्यंत सुन्दर, मनोहर दृश्य उपस्थित किए हैं। डॉ. भावना कुँअर ने ‘हिन्दी हाइकु में फूलों की सुगंध’ में केवल फूलों पर प्रस्तुत किए गए हिन्दी हाइकुओं की मनोरम छटा उकेरी, तो डॉ. ज्योत्सना शर्मा ने ‘हिन्दी हाइकु में वर्षा ऋतु वर्णन’ साकार किया। डॉ. उर्मिला अग्रवाल का ‘हिन्दी हाइकु में नारी चित्रण’ तथा डॉ. जेन्नी शबनम का आलेख ‘हिन्दी हाइकु में जीवन दृष्टि’ बेहद सारगर्भित, शोधपरक लेख हैं। कमला निखुर्पा हिन्दी हाइकु में त्योहारों की सुन्दर छटा उकेरती हैं तो अनिता ललित जी ने हिन्दी हाइकु में आत्मीय सम्बन्धों की मनोरम झाँकी प्रस्तुत की है। डॉ. हरदीप कौर संधु का आलेख ‘पंजाबी हाइकु और हाइकु लोक’ पंजाबी हाइकु की दृष्टि-सृष्टि को स्पष्ट करता है। ‘हिन्दी हाइकु-काव्य में शृंगार-रस’ शीर्षक से डॉ. सतीशराज पुष्करणा जी ने अपने आलेख में शृंगार को परिभाषित करते हुए हाइकुकारों के शृंगार-परक हाइकुओं को इतनी सुन्दरता से प्रस्तुत किया है कि स्वयं शृंगार भी शृंगारित हो गया प्रतीत होता है। ‘हिन्दी हाइकु में प्रेम-निरूपण’ पर रामेश्वर काम्बोज ‘हिमांशु’ का आलेख प्रेम से सम्बद्ध तमाम संकुचित अवधारणाओं का खंडन करता हुआ हिन्दी हाइकु में उसके परम उदात्त, पावन और दिव्य स्वरूप का प्रतिस्थापन, मंडन करता है। अस्तु, अपनी सम्पूर्ण निष्ठा के साथ प्रस्तुत ‘हिन्दी हाइकु विशेषांक’ हिन्दी हाइकु ही नहीं अपितु हिन्दी साहित्य की अनुपम निधि है। सभी हाइकु प्रेमियों तथा हिन्दी हाइकु विषयक शोध छात्रों के प्रति संकलित, उत्कृष्ट पठनीय सामग्री उपस्थित करता हुआ यह अंक प्रधान सम्पादक डॉ. आनन्दसुमन सिंह, अतिथि संपादक रामेश्वर काम्बोज ‘हिमांशु’ तथा समस्त सम्पादक मंडल के लिए बधाई का कारण बन गया है।



‘सरस्वती सुमन’ हाइकु विशेषांक (अक्टूबर-दिसम्बर-२०१४): प्रधान सम्पादक डॉ. आनन्दसुमन सिंह, अतिथि संपादक : रामेश्वर काम्बोज ‘हिमांशु’, पृष्ठ : १८४, मूल्य : २० रुपये; प्रकाशक: सारस्वत, १-छिब्र मार्ग, आर्यनगर, देहरादून-२४८००१



साहित्य और संवाद : एक चिंतन यात्रा

प्रोफेसर डॉ. चंचल बाला

विगत दो दशकों में हिंदी साहित्य की लगभग प्रत्येक विधा पर स्तरीय लेखन हुआ है और प्रतिष्ठित कृतियों का मूल्यांकन भी पत्र-पत्रिकाओं में मिलता रहा है। डॉ. मधु संधु ने 'साहित्य और संवाद' में 1991 से 2012 तक प्रकाशित पुस्तकों पर लिखी अपनी 'मूल्यांकन समीक्षाओं' या 'समीक्षात्मक मूल्यांकन' को एक जिल्द में बाँधने का श्लाघापरक कार्य किया है। पुस्तक के 28 शीर्षकों में कोई 30 समीक्षाएँ हैं। समकालीन कथा समीक्षा में डॉ. मधु संधु का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने शोध और आलोचना में 1981 में 'कहानीकार निर्मल वर्मा' के साथ प्रवेश किया। 'साठोत्तर महिला कहानीकार', 'कहानी कोश', 'महिला उपन्यासकार', 'हिंदी लेखक कोश', कहानी का समाजशास्त्र, 'हिंदी कहानी कोश', 'हिंदी का भारतीय और प्रवासी महिला कथा लेखन' आदि उनके आलोचनात्मक एवं शोधपरक ग्रन्थ हैं। 'नियति और अन्य कहानियाँ' कहानी संग्रह 'गद्य त्रयी', और 'कहानी शृंखला' संपादित रचनाएँ हैं। हिंदी की लगभग सभी प्रकाशित और नेट पत्रिकाओं में उनकी रचनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं। उनमें अपनी पारदर्शी आलोचक दृष्टि से सृजनात्मक रचना के आर-पार देख उसका सशक्त मूल्यांकन करने की रचनात्मक सामर्थ्य है।

साहित्य और संवाद में 1091 से 2012 तक प्रकाशित उन उपन्यासों, कहानी संकलनों, काव्य रचनाओं, पत्रों, आत्मकथाओं, व्यंग्य रचनाओं का मूल्यांकन है; जिन पर लेखिका की समीक्षाएँ पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित होती रही।

'साहित्य और संवाद' मात्र समीक्षात्मक ग्रन्थ नहीं है। इसमें 22 वर्ष के हिंदी साहित्य में समाये विद्रोह के स्वर गूँज-अनुगूँज उत्पन्न कर रहे हैं। यहाँ नारी विमर्श, उत्पीड़न और सशक्तिकरण है। दायम दर्जा झेलने वाली स्त्री पुरुष से तेज भाग रही है। निकट अतीत की घटनाओं को लेकर लिखे गए ऐतिहासिक उपन्यास हैं। समय और समाज, राजनीति और व्यवस्था के कूट रहस्यों का अनावरण है। कश्मीर की सुलगती घाटी में बिलबिला रहा पाषाण युग है। नशाखोरी, कैसर और वेश्यावृत्ति को स्वर देने वाले उपन्यास हैं। जीवनीपरक आत्मकथांश हैं। प्रवास में जीवन की लय ढूँढ़ रहे प्रवासी हैं। हर रचना सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक मूल्यों से टकरा रही है। 'साहित्य और संवाद' एक प्रभावी शुरुआत है। दो दशकों में मिलने वाली चुनौतियों का स्वर है। सृजन में समाये चिंतन का एक सुधी आलोचक द्वारा किया गया मूल्यांकन है।

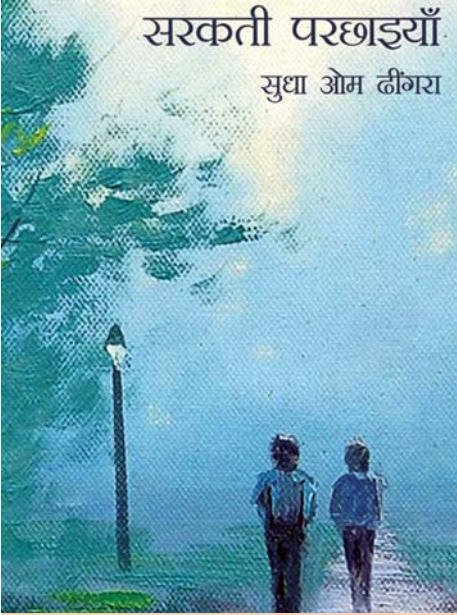


पुस्तक-साहित्य और संवाद
लेखिका-डॉ. मधु संधु

प्रकाशक-अयन प्रकाशन, महरौली, दिल्ली 30

वर्ष-2014

संपर्क-हिंदी विभाग, खालसा कालेज फार
विमेन, अमृतसर-143105.



सरकती परछाइयाँ

सुधा ओम ढींगरा

सरकती परछाइयाँ (काव्य संग्रह)

लेखक : डॉ. सुधा ओम ढींगरा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र,

मूल्य : 150 रुपये



डॉ. सीमा शर्मा, एल-235, शास्त्री नगर, मेरठ,
250004, उप्र, मोबाइल 9457034271

सद्यः प्रकाशित काव्य-संग्रह 'सरकती परछाइयाँ' हिन्दी भाषा की एक महत्त्वपूर्ण कृति है। इसकी विशेषता है इसकी सहजता, इसकी आडम्बरहीनता। कवयित्री डॉ. सुधा ओम ढींगरा ने इन कविताओं में अपने अनुभव को बड़ी सादगी के साथ अभिव्यक्त किया है। उनकी विशेषता है कि वे गम्भीर से गम्भीर मुद्दे को बड़ी आसानी से अपने पाठक तक पहुँचा पाती हैं, यही कारण है कि पाठक सीधे-सीधे उनकी भावनाओं से जुड़ता है। सम्प्रेषणीयता केवल उनके काव्य की विशेषता नहीं, गद्य की भी है और यह किसी भी रचना का सबसे आवश्यक गुण है।

इस संग्रह की पहली कविता से लेकर अन्तिम कविता तक भारत की मिट्टी की सुगन्ध है। इतने वर्षों से भारत से दूर अमेरिका में रहकर भी, भारत उनके अन्दर बसता है जो किसी न किसी रूप में प्रकट होता ही रहता है। संग्रह की पहली ही कविता इसका सटीक उदाहरण है - परदेश के आकाश पर / देशी मांजे से सनी / आकांक्षाओं से सजी / ऊँची उड़ती मेरी पतंग / दो संस्कृतियों के टकराव में। कई बार कटते-कटते बची / शायद देशी मांजे में दम था / जो टकरा कर भी कट नहीं पायी। और उड़ रही है। विदेश के ऊँचे खुले आकाश पर। बेझिझक, बेखौफ।

कुछ लोग प्रवासी भारतीयों को 'देशप्रेमी' नहीं मानते और उन्हें पीड़ा पहुँचाने वाली बातें करते हैं, इनसे कवि मन बहुत आहत होता है। 'देशप्रेमी' कविता ऐसे ही भावों को व्यक्त करती है - "देशवासी / प्रवासियों को / देशप्रेमी नहीं / जो देश को छोड़ गए / कहकर उनका अस्तित्व नकार देते हैं.....। और स्वयं देश को गाली देकर / उसे हानि पहुँचाकर / भ्रष्टाचार / बेईमानी फैलाकर। देशप्रेमी कहलाते हैं.....। क्या विडम्बना है?"

'सच कहा आपने' कविता में भी यही वेदना है कवि मन में। पर इस कविता की विशेषता है कि लेखिका ने व्यंग्य के माध्यम से अपनी बात को साफ़-साफ़ कहा है और उस प्रकार की मानसिकता रखने वालों को दर्पण दिखाने का कार्य किया है। पर भाषा एकदम सधी हुई है। ऐसा नहीं है कि भावावेश में आकार कुछ अधिक कह दिया हो। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण 'सच कहा आपने' एक महत्त्वपूर्ण कविता बन गई है। 'सरकती परछाइयाँ' में कोई एक तरह की कविताएँ नहीं हैं, वरन् जीवन के विभिन्न पहलुओं से जुड़ी हुई कविताएँ हैं। अतीत की स्मृतियाँ, अपने परिवार की स्मृतियाँ, अपने देश की स्मृतियाँ, भारतीय और पाश्चात्य देशों की स्त्री की तुलना; अकेलापन, वृद्धावस्था में अकेलापन, प्राकृतिक आपदा, नैतिक विचार, स्त्रियों की दशा और उनकी विवशता, ग्लोबलाइजेशन के प्रभाव, अपने दार्शनिक विचारों को स्थापित करने का प्रयास और जीवन के अन्तिम सत्य को समझने का प्रयास भी इन कविताओं में हैं। 'जिंदगी', 'भूल गए लोग', 'प्रकृति की ऊहापोह', 'कुछ सत्य', 'अद्भुत कृति हूँ मैं' आदि कविताओं में सुधा जी ने जीवन की क्षण भंगुरता को दिखाने का प्रयास किया है - "जीवन की भट्टी में / भावनाएँ / संवेग / अभिलाषाएँ / इच्छाएँ / दानों सी भून डाली / जिंदगी फिर भी मचल गई / बालू सी हाथ से सरक गई.....।" 'गन्तव्य की यात्रा' जीवन की नश्वरता को दिखाने वाली एक महत्त्वपूर्ण कविता है। इसी प्रकार 'कटु सत्य' में ऐसे ही विचारों की स्थापना है और यह भी कटु सत्य है कि यह जीवन का अन्तिम सत्य है। इस कविता की कुछ ऐसी पंक्तियाँ जो एक बार तो सोचने के लिए विवश जरूर करेंगी - अकेले आए हैं / अकेले है जाना / जीवन में मृत्यु को / जब है आना / फिर क्यों / महत्वाकांक्षाओं के अजगर पाले हैं / मौत ने निगल तो उनको भी / एक दिन जाना है।"

लेखक के पास अनुभवों की जितनी अधिकता होगी, उसका साहित्य उतना ही समृद्ध और वैविध्यपूर्ण होगा। एक स्थान विशेष पर रहकर केवल कल्पना मात्र से दूसरे स्थान का वर्णन संभव नहीं

है और तुलना और भी मुश्किल है। आमतौर पर हम भारतीय यह धारणा बना लेते हैं विकसित पाश्चात्य देशों की स्त्रियाँ उन्मुक्त होती हैं। वे पारिवारिक दायित्वों का निर्वहन उस प्रकार नहीं करती, जिस प्रकार एक भारतीय स्त्री करती है, लेकिन जब हम सुधा ओम ढींगरा की कविता 'वह अमरीकी महिला' पढ़ते हैं तो हम अपनी उस धारणा को या पूर्वग्रह को बदलने के लिए विवश हो जाते हैं। लेखिका को भी उस महिला में अपनी माँ दिखाई देती है - वह अमरीकी महिला / उनकी प्रतीक्षा में / स्कूल बस स्टॉप पर / चिंतित खड़ी / मुझे मेरी माँ सी लगती है। लेखिका 'स्त्री' को किसी देश की सीमाओं में बाँधकर नहीं देखती। वह उनके लिए केवल 'स्त्री' है, वह किस देश की है, कहाँ रहती है, यह महत्वपूर्ण नहीं है। वे स्त्री को स्वाभिमानी, स्वावलम्बी, आत्मविश्वासी नारी के रूप में देखती हैं जो कुछ कहना नहीं करना जानती है, माँगना नहीं, पाना जानती है। पर कहीं-कहीं स्त्री परिस्थितियों के आगे विवश है, लेकिन वह हार नहीं मानती, जैसी भी परिस्थिति हो वह उनसे आगे निकलने का प्रयास करती है। 'विडम्बना' और 'सच कहूँ' परिस्थितियों से जूझती ऐसी ही स्त्रियों की कविताएँ हैं।

'उलझन' और 'वृद्धों की बात' 'सरकती परछाइयाँ' की दो महत्वपूर्ण कविताएँ हैं जो वृद्धों की दुर्दशा की ओर संकेत करती हैं - "सूखे पात। और वृद्धों की बात / इस समाज में अवांछनीय है / यह प्रवृत्ति लांछनीय है" लोगों की इस विकृत सोच को वे 'उलझन' कविता में इस प्रकार व्यक्त करती हैं- घरों के क्षेत्र बढ़े, तो / लोगों के हृदय सिकुड़ने लगे / समृद्धि का मद चढ़ा, तो / रिश्ते टूटने लगे। / भावनाएँ लुप्त हुई, तो / संवेग सूखने लगे।

अपनी तरक्की के लिए रिश्तों का सीढ़ी की तरह प्रयोग करने वालों पर लेखिका ने 'बदलती परिभाषाएँ' नामक कविता में करारा व्यंग्य किया है - "समय परिवर्तन ने / इनकी भी परिभाषा बदल दी है/ लोग रिश्तों को भी / बदलने लगे हैं सीढ़ियों में। कभी पत्नी, कभी बहन / यहाँ तक कि बेटे को भी / इस्तेमाल करने लगे हैं / सीढ़ी की तरह / अपने निहित स्वार्थ के लिए।

साम्प्रदायिकता की भावना मानव समाज के लिए कितनी विध्वंसकारी सिद्ध हो रही है? इससे

कौन परिचित नहीं है? 'खोज', 'भटकन', 'एक विचार' और 'संधि रेखा' आदि कविताएँ साम्प्रदायिकता जैसे संवेदनशील मुद्दे को लेकर लिखी गई हैं। मंदिर, मस्जिद और गुरुद्वारे, जिन्हें सद्भाव का केन्द्र होना चाहिए वे ही नफरत के केन्द्र बन जाँएँ तो क्या हो? 'भटकन' में इन्हीं भावों को व्यक्त किया गया है-रिश्तों की महक, खुशबू प्यार की / ढूँढ़ने से अब कहीं मिल न सकी...../ तेरे बन्दे तो सब देवता बन गए / इन्सानियत की झलक कहीं मिल न सकी....."

सुधा जी इस दूरी को मिटाना चाहती है। वे सबको एक साथ देखना चाहती है। इसके लिए वे स्वयं एक टुकड़ी बन जाना चाहती है - क्या मेरे पड़ोस के / रहीम, बनवारी, सरदार सिंह और जॉन / इकट्ठे नहीं चल सकते? / क्या कोई टुकड़ी उन्हें धकेलकर / इकट्ठा नहीं कर सकती / काश ! मैं वह टुकड़ी बन पाती।

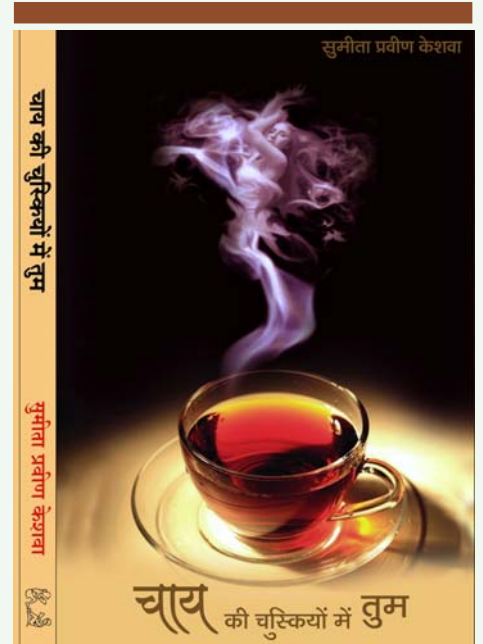
'सरकती परछाइयाँ' की कविताओं के विषय वैविध्यपूर्ण हैं, जहाँ कुछ गम्भीर बिन्दु कविता का विषय बनकर आये हैं, तो वहीं कुछ सामान्य जीवन के अनुभव की कविताएँ हैं जैसे 'विचार' कविता को रचना प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है - "विचार आते तो है / स्वच्छंद/ उन्मुक्त बाला से, कलम पर बैठते ही / दुल्हन से हो जाते हैं...../ शब्दों की ओढ़नी शिल्प के आभूषण / कथ्य की पाजेब पहन। भिन्न-भिन्न स्वरूप धरते हैं। कैसे सुन्दर सजते हैं....."

लेकिन हमेशा ये शब्द कवि का साथ नहीं देते। ऐसी स्थिति में कवि की पीड़ा इन पंक्तियों में देखी जा सकती है - "कवि की पीड़ा / कवि ही जाने / कविता जब रूठकर / कलम पर उतरती ही नहीं।"

डा.सुधा ओम ढींगरा के इस काव्य संग्रह की एक विशेषता इसकी भाषा भी है। विषय चाहे जितना गम्भीर हो परन्तु भाषा में कहीं भी दुरुहता नहीं है। डा.सुधा ओम ढींगरा की भाषा सहज और सरल है यही कारण है कि पाठक को कहीं भी भाषा के स्तर पर संघर्ष नहीं करना पड़ता और वह सीधे-सीधे कविता के भाव के साथ जुड़ता है। यह कवि की, या एक लेखक की सबसे बड़ी सफलता है कि वह जो कुछ कहना चाहता है वह सीधे पाठक तक पहुँच रहा है।



पुस्तक समीक्षा



चाय की चुस्कियों में तुम (काव्य संग्रह)

कवयित्री: सुमीता केशवा

प्रकाशक: मानव प्रकाशन 131, चितरंजन एवेन्यू

कोलकाता-700073, मूल्य-200/-

ताजा बयार चली तो है..

संतोष श्रीवास्तव

उत्तराखंड के हरे-भरे परिवेश से आकर महानगर की कंकरीट और यांत्रिक दुनिया में प्रवेश करने वाली सुमीता प्रवीण केशवा का पहला काव्य संग्रह 'चाय की चुस्कियों में तुम' ताजगी का एहसास कराता है। हर युग में कविता के मापदंड बदल जाते हैं। नए-नए प्रतीकों और बिंबों को लेकर कविताओं का सृजन होता है, लेकिन अब कविता में जोखिम भी बढ़ गया है। बदलते परिवेश में कविता के धर्म को निभा पाना जटिल ही नहीं चुनौती भरा भी है। एक सौ बत्तीस पृष्ठों के इस काव्य संग्रह में कवयित्री ने यह चुनौती स्वीकार की है। वे एक ऐसे पुल से गुजरी हैं, जो दोनों किनारों को जोड़कर नदी की दुर्गमता खत्म करता है। इन कविताओं का एक अपना अलग संसार है। जहाँ किसी भी तरह के हस्तक्षेप को वे नकारती हैं। उनके इस संसार में यथार्थ के ठोस धरातल पर कल्पना के रंग भी बिखरे हैं, प्रेम का ज्वार भी है तो

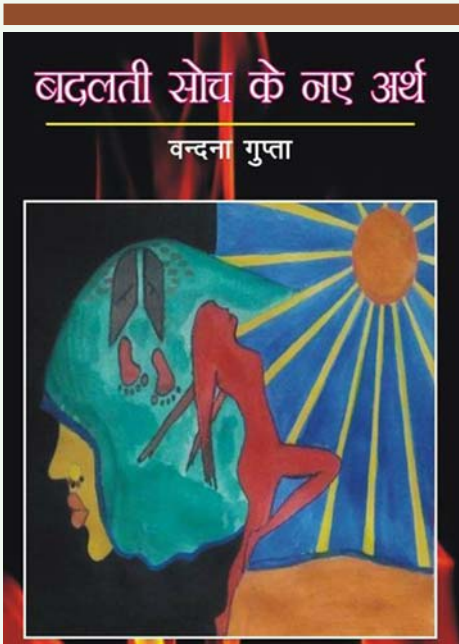
बदलती सोच के नए अर्थ : प्रवाहमयी शैली

संगीता स्वरूप

कटघरे में प्रेम भी है, जो रूह की अदालत में खड़ा है। स्त्री की सच्चाइयाँ भी हैं। सुमीता जी की कविताएँ साहित्य के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को व्यापक परिप्रेक्ष्य में रेखांकित करती हैं। कहीं वे निजीकरण की भेंट चढ़ चुके प्रगतिशील देश के युवाओं को लेकर चिंतित हैं....भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद की संस्कृति में गले-गले तक निमग्न युवाओं का पहला हक बनता है अपने देश पे..वह देश जो बाज़ारवाद की आँधी में अब सुरक्षित नहीं है। पूरी दुनिया ही बाज़ार में ढल गई है, जहाँ सब कुछ बिकाऊ है। संग्रह का नाम 'चाय की चुस्कियों में तुम' इस नज़रिए से सार्थक बन पड़ा है कि चाय जहाँ स्फूर्ति और काम करने की ऊर्जा देती है, वहीं उसकी कमी की तलब डिस्टर्ब भी करती है। कवयित्री जिस 'तुम' के संग तमाम कविताओं की शब्द यात्रा करती हैं..उस 'तुम' की तलब उनकी कविताओं की आत्मा बन गई है। इन कविताओं को सिर्फ कविता होने की वजह से नहीं, उसमें निहित गहरे और व्यापक प्रेम, सामाजिक आशयों के लिए भी पढ़ा जाना चाहिए।



पुस्तक समीक्षा



पुस्तक का नाम-बदलती सोच के नए अर्थ
कवयित्री -वंदना गुप्ता
प्रकाशक-परिलेख प्रकाशन
वालिया मार्केट नजीबाबाद-246763
बिजनौर। (यू. पी.)

हिंदी अकादमी दिल्ली के सौजन्य से प्रकाशित सुश्री 'वंदना गुप्ता' का काव्य संग्रह बदलती सोच के नए अर्थ सोच को बदलने की पूर्ण क्षमता रखता है। इस काव्य संग्रह को पढ़ते हुए कई बार ये महसूस हुआ कि आज मात्र सोच ही नहीं बदल रही है वरन उसके अर्थ भी बदल रहे हैं। कवयित्री के लेखन की एक अलग ही विशेषता है। वो अपनी रचनाओं के माध्यम से एक ही विषय पर अपने मन में उठने वाले संशयों को विस्तार से रखती हैं और फिर उन संशय के उत्तर खोजती हुई अपना एक पुख्ता विचार रखती हैं और पाठक उनकी प्रवाहमयी शैली से बंधा उनके प्रश्न उत्तर को समझता हुआ उनके विचार से सहमत-सा होता प्रतीत होता है। इस काव्य संग्रह में काव्य सौन्दर्य से परे विचार और भाव की महत्ता है इसीलिए इसका नाम बदलती सोच के नए अर्थ सार्थक है।

अपने इस काव्य संग्रह को इन्होंने चार भागों में विभक्त किया है। प्रेम, स्त्री विषयक, सामाजिक और दर्शन। प्रेम एक ऐसा विषय जिस पर न जाने कितना कुछ लिखा गया है लेकिन वंदना जिस प्रेम की तलाश में है वो मन की उड़ान और गहराई दोनों ही दिखाता है। वह प्रेम में देह को गौण मानते हुए लिखती हैं। जानते हो कभी कभी ज़रूरत होती है देह से इतर प्रेम की.. राधा कृष्ण-सा एक अनदेखा अनजाना सा व्यक्तित्व जिसके माध्यम से प्रेम की पराकाष्ठा का अहसास होता है।

चलो आज तुम्हे एक बोसा दे ही दूँ...उधार समझ कर रख लेना कभी याद आए तो। तुम उस पर अपने अधर रख देना मुहब्बत निहाल हो जाएगी।

कुछ ऐसे विषय जिन्हें आज भी लोग वर्जित समझ लेते हैं उस पर इन्होंने अपनी बेबाक राय देते हुए अपने विचार रखे हैं इसी कड़ी में उनकी एक रचना है-प्रेम का अंतिम लक्ष्य क्या... सैक्स। अपने विचारों को पुख्ता तरीके से रखते हुए उनका कहना है कि सैक्स के लिए प्रेम का होना ज़रूरी नहीं तो दूसरी ओर जहाँ आत्मिक प्रेम होता है वहाँ देह का भान भी नहीं होता। उनका प्रेम सदाबहार है। तभी कहती हैं कि प्रेम कभी प्रौढ़ नहीं होता।

स्त्री विषयक और सामाजिक रचनाओं दोनों में

ही उन्होंने सदियों से स्त्री के मन में घुटे, दबे भावों को शब्द दिए हैं। पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियाँ अब अपने वजूद की तलाश में हैं और शोषित होते होते अघा गई हैं।... अब विस्फोट की स्थिति आ गयी है तो विद्रोह तो होना ही है।...

मर्दों के शहर की अघाई औरतें जब उतारू हो जाती हैं विद्रोह तो कर देती हैं तार-तार सारी लज्जा की बेड़ियों को उतार देती हैं लिबास हया का जो ओढ़ रखा था बरसों से, सदियों ने और अनावृत हो जाता है सत्य जो घुट रहा होता है औरत की जंघा और सीने में।

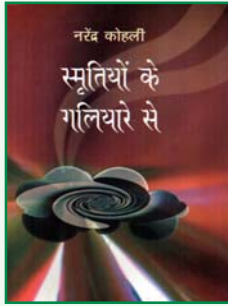
स्त्रियों में जो प्राकृतिक शारीरिक परिवर्तन होते हैं और उसके कारण होने वाले बदलाव पर भी इन्होंने अपनी लेखनी चलाई है।..ऋतुस्त्राव से मीनोपाज तक का सफ़र। ये ऐसे विषय हैं जिन पर शायद ही इससे पहले किसी रचनाकार का ध्यान गया हो। स्त्री विषयक रचनाओं में विद्रोह के स्वर मुखरित हुए हैं। कागज ही तो काले करती हो, में स्पष्ट रूप से इंगित कर दिया है कि ये लिखना लिखाना बेकार है जब तक कोई अर्थ (पैसा) नहीं मिलता। अंतिम पंक्तियों में भावनाओं को निचोड़ कर रख दिया है।

इनकी कविताओं के शीर्षक से ही विद्रोह का स्वर गूँजने लगता है.. जैसे..खोज में हूँ अपनी प्रजाति के अस्तित्व की, आदिम पंक्ति की एक क्रांतिकारी रुकी हुई बहस हूँ मैं.. क्यूँ कि तख्ता पलट यूँ ही नहीं हुआ करते।

इस काव्य संग्रह की एक दो रचनाओं को छोड़ दें तो सभी लम्बी कविताओं का रूप लिये हैं। और इनका लम्बा होना लाजमी भी था; क्योंकि सभी विचार प्रधान रचनाएँ हैं। हो सकता है कि पाठक लम्बी कविताओं को पढ़ने का हौसला न रखे पर मैं ये दावे से कह सकती हूँ कि.. इनकी प्रवाहमयी शैली और उनके तर्क वितर्क पाठकों को बांधे रहेंगे और पाठक कविता खत्म करते करते उस विषय से जुड़ा महसूस करेगा। यह काव्य संग्रह पाठक की भावनाओं को उद्वेलित करने में पूर्णतः सक्षम है।

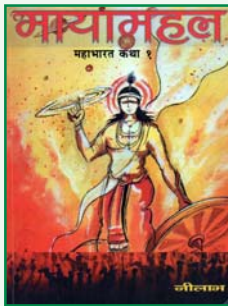


पुस्तकें



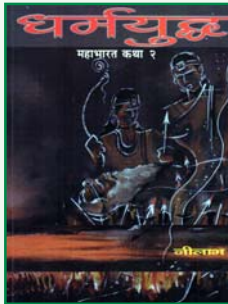
स्मृतियों के गलियारे से

लेखक: नरेन्द्र कोहली
प्रकाशक: भावना प्रकाशन
109, पटपड़गंज, दिल्ली-110091
मूल्य: 400 रुपये



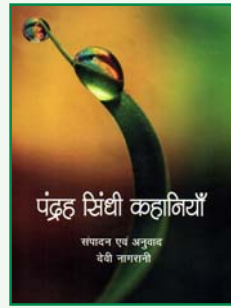
मायामहल

पौराणिक कथा
महाभारत कथा 1
लेखक: नीलाभ
प्रकाशक: हार्परकॉलिंस पब्लिशर इंडिया
ए -53, सेक्टर-57, नौएडा-201301
उत्तर प्रदेश, भारत



धर्मयुद्ध

पौराणिक कथा महाभारत कथा 2
लेखक: नीलाभ
प्रकाशक: हार्परकॉलिंस पब्लिशर इंडिया
ए -53, सेक्टर-57, नौएडा-201301, उत्तर
प्रदेश, भारत



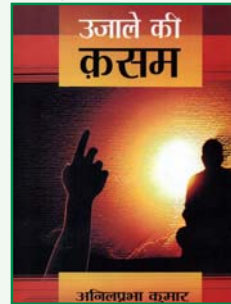
पंद्रह सिंधी कहानियाँ

संपादन एवं अनुवाद: देवी नागरानी
प्रकाशक: हिन्दी साहित्य निकेतन
16 साहित्य विहार
बिजनौर (उ. प्र.)
246701
मूल्य: 200 रुपये



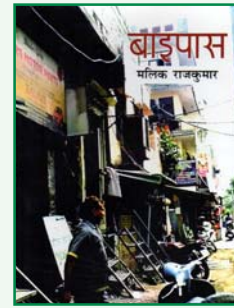
कैनवास पर प्रेम

उपन्यास
लेखक: विमलेश त्रिपाठी
प्रकाशक: भारतीय ज्ञानपीठ
18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई
दिल्ली-110003
मूल्य: 200 रुपये



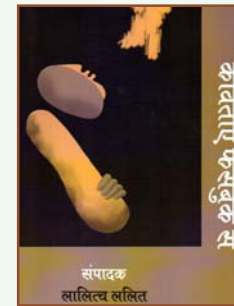
उजाले की कसम

काव्य संग्रह
कवयित्री: अनिल प्रभा कुमार
प्रकाशक: भावना प्रकाशन
109, पटपड़गंज, दिल्ली-110091
मूल्य: 300 रुपये



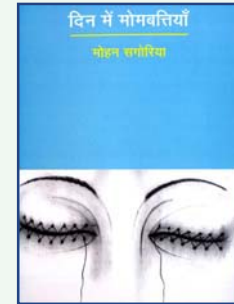
बाइपास

उपन्यास
लेखक: मालिक राजकुमार
प्रकाशक: श्री नटराज प्रकाशन
ए -507 /12, साउथ गामड़ी एक्स
दिल्ली-110053
मूल्य: 350 रुपये



कविताएँ फेसबुक से

संपादक: लालित्य ललित
प्रकाशक: हिन्दी साहित्य निकेतन
16 साहित्य विहार
बिजनौर (उ. प्र.)
246701
मूल्य: 200 रुपये



दिन में मोमबत्तियाँ

लेखक: मोहन समोरिया
प्रकाशक: साखी प्रकाशन
509 जीवन विहार, पी एंड टी चौराहा
भोपाल -466001 (म.प्र.)
मूल्य: 200 रुपये

पत्रिकाएँ



तमिलनाडु साहित्य बुलेटिन

डॉ. मधु धवन
के 3, अन्ना नगर ईस्ट, चैन्नई 600102
संपर्क: 9381049020



पुनर्नवा

प्रबंध संपादक : योगेन्द्र मोहन
संपादन: राजेन्द्र राव
दैनिक जागरण
2 सर्वोदय नगर
कानपुर, उत्तरप्रदेश 208005



शोष

हसन जमाल
पन्ना निवास के पास
लोहारपुरा
जोधपुर 342001
संपर्क: 9829314018



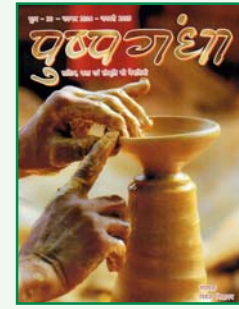
आधुनिक साहित्य

संपादक: आशीष कुमार
मुख्यालय: एडी-94-डी,
शालीमार बाग
दिल्ली-110088
संपर्क सूत्र: 09811184393



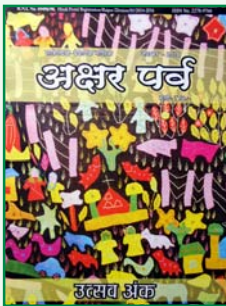
वाङ्मय

एम. फ़ीरोज़ अहमद
205 ओहद रेजीडेंसी
पान वाली कोठी, दोदपुर रोड
सिविल लाइन, अलीगढ़ 202002
संपर्क: 9044918670



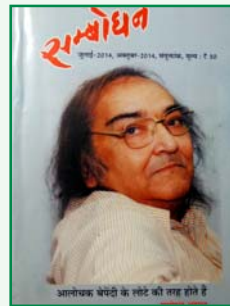
पुष्पगन्धा

संपादक: विकेश निझावन
557- बी, सिविल लाइन्स,
आई. टी. आई. बस स्टॉप के सामने,
अम्बाला शहर-134003 (हरियाणा)
संपर्क: 9896100557



अक्षर पर्व

सर्वमित्रा सुरजन
देशबन्धु कार्यालय
506 आइएनएस बिल्डिंग
9 रफी मार्ग, नई दिल्ली 110001
संपर्क: 012023718195



सम्बोधन

कमर मेवाड़ी
पोस्ट: कांकोरोली
जिला राजसमंद 313324
राजस्थान
संपर्क: 9829161342



रंग संवाद

प्रधान संपादक: संतोष चौबे
संपादक: विनय उपाध्याय
वनमाली सृजन पीठ
22, ई 7, अरेरा कॉलोनी
भोपाल मप्र 462016



ज्योति जैन की दो किताबों का लोकार्पण

जीवन एक जटिल माहौल से गुजर रहा है। बेटे विदेश में लाखों कमा रहे हैं और माता-पिता के लिये देश में पैसों का इंतजाम कर दे रहे हैं; लेकिन जीवन की संध्या बेला में पैसों की नहीं अपनेपन की ज़रूरत होती है। बेटियाँ निश्चित रूप में अभिभावकों के प्रति ज्यादा सजग और ईमानदार हैं। बेटे माता-पिता के अवदान और संघर्ष के प्रति ज्यादा सजग और संवेदनशील है।

ये विचार देश की मूर्धन्य लेखिका सुधा अरोड़ा ने ज्योति जैन के कवित संग्रह 'माँ-बेटी' और कहानी संग्रह 'सेतु तथा अन्य कहानियाँ' की लोकार्पण बेला में कहे। कार्यक्रम का संचालन संस्कृतिकर्मी संजय पटेल ने किया। स्वागत संबोधन चानी जैन ने और स्मृति जोशी ने ज्योति जैन के रचना यात्रा का ब्यौरा दिया। स्वाति जैन, डॉ. प्रेमकुमारी नाहय, स्वर्णिम माहेश्वरी, हेमंत बड़जात्या, किसलय पंचोली और मंजू मेहता ने अतिथियों का स्वागत किया। स्मृति चिन्ह शिखा जैन माहेश्वरी, राजू बड़जात्या और निवेदिता बड़जात्या ने भेंट किया। आभार शरद जैन ने माना।



हाज़िर हों-वाजाल और वाजा की अदालत में प्रसिद्ध रचनाकार सूर्यबाला

गत 14 सितम्बर को नई दिल्ली के इंडिया गोगेगाँव के अजंता पार्टी हाल में राइटर्स एंड जर्नलिस्ट्स एसोसिएशन की महिला इकाई (वाजाल) की अध्यक्ष अलका अग्रवाल सिगतिया, सचिव कविता गुप्ता, सांस्कृतिक सलाहकार अर्चना जौहरी और कोषाध्यक्ष ममता सिंघल की ज्युरी ने प्रख्यात कहानीकार तथा व्यंग्यकार सूर्यबाला से पाठकों और प्रशंसकों के सामने खुली अदालत में सवाल-जवाब किये; जिनके जवाब सूर्यबाला ने पूरी ईमानदारी से दिए। एस एन डी टी विश्वविद्यालय की हिंदी विभागध्यक्ष वंदना शर्मा ने सूर्यबाला के समग्र साहित्य पर बहुत ही प्रभावी वक्तव्य देते हुए कहा कि सूर्यबाला जी की कहानियों को पढ़ते हुए पाठकों को यह लगता है कि ऐसा तो मेरे साथ भी घटित हो चुका है।

सूर्यबाला जी का सम्मान वाजा के महाराष्ट्र अध्यक्ष अभिजीत राणे, व्यंग्यकार प्रेम जनमेजय, लेखिका डॉ अचला नागर तथा साहित्य प्रेमी बृजमोहन अग्रवाल ने किया। व्यंग्य यात्रा के संपादक प्रेम जनमेजय ने सूर्यबाला जी के व्यंग्य साहित्य की प्रशंसा की तो अचला नागर जी के लिए यह बात महत्वपूर्ण है कि सूर्यबाला जी लगातार साढ़े तीन दशक से लिख रही हैं।

कार्यक्रम का संचालन प्रोफेसर हूबनाथ पाण्डे ने किया। जाने माने सिने व टीवी कलाकार राजेंद्र

गुप्ता ने सूर्यबाला की कहानी पूर्णाहुति का पाठ अपने विशिष्ट अंदाज में किया। अभिनेता दयाशंकर पाण्डे ने उनके व्यंग्य दास्ताने विलेन का पाठ बड़े चुटीले ढंग से किया। सूर्यबाला जी की बाल कहानी 'झगड़ा निपटारा दफ्तर' की नाट्य प्रस्तुति रहेजा टिपको हाइट्स, मलाड पूर्व की बालिकाओं के ग्रुप 'बार्बी डॉल्स' ने की जिसकी उपस्थित दर्शकों ने खूब प्रशंसा की। सूर्यबाला की कहानी का नाट्य रूपांतरण व निर्देशन अर्चना जौहरी ने किया एवं निर्देशन सहयोग ममता सिंघल और अमित श्रीवास्तव ने किया। इस अवसर पर दूरदर्शन के लिए निर्मित फिल्म सजायाफता का प्रदर्शन भी किया गया। वाजाल की अध्यक्ष अलका अग्रवाल सिगतिया ने कहा कि इस कार्यक्रम का प्रारूप नवीन होते हुए भी बहुत रुचिकर तथा गरिमा पूर्ण है। धन्यवाद ज्ञापन कविता गुप्ता ने किया।

इस कार्यक्रम में डॉ उमाकांत वाजपेयी, राजेश विक्रांत, नुसरत खत्री, अफज़ल खत्री, आफताब आलम, संतोष श्रीवास्तव, संजीव निगम, सुमित्रा अग्रवाल, लक्ष्मी यादव, हेमा चंदानी, अर्चना श्रीवास्तव, खन्ना मुज़फ़्फ़रपुरी, अनिल तिवारी आदि अनेक लोग उपस्थित थे।

नाट्य प्रस्तुति में भाग लेने वाली बालिकाओं के नाम हैं-शरण्या, सारण्या, महक, हर्षिता, मायरा, आरिया, जाहवी, दिशा, अनन्या।



विजयवर्मा कथा सम्मान डॉ.हरिसुमन बिष्ट को तथा हेमंत स्मृति कविता सम्मान अर्चना राजहंस मधुकर को

हेमंत फाउंडेशन द्वारा आयोजित वर्ष २०१४ का १७वां विजय वर्मा कथा सम्मान संवेदनशील लेखक डॉ. हरिसुमन बिष्ट को उनके उपन्यास 'बसेरा' तथा १३वां हेमंत स्मृति कविता सम्मान युवा कवयित्री अर्चना राजहंस मधुकर के कविता संग्रह 'भीगा हुआ सच के लिए' दिए जाने की घोषणा पदाधिकारी डॉ.विनोद टीबड़ेवाला, संतोष श्रीवास्तव, आलोक भट्टाचार्य, प्रमिला वर्मा तथा सुमीता प्रवीण के साथ संयुक्त रूप से की गई। पुरस्कार के संयोजक एवं निर्णायक भारत भारद्वाज ने बताया कि जहाँ एक ओर 'बसेरा' उपन्यास के केन्द्र में जीवन समाज के बर्बर समय में न केवल जिंदगी की तलाश है बल्कि संवेदनशीलता रहित अमानवीय होते संबंधों की पडताल है, वहीं दूसरी ओर 'भीगा हुआ सच' कविता संग्रह की कविताओं में ग्लोबल दुनिया की चकाचौंध है। जिसे कलात्मक ढंग से उकेरा गया है।

पुरस्कार समारोह का आयोजन रविवार दिनांक ११ जनवरी २०१५ को मुम्बई में आयोजित किया जाएगा।



स्पंदन सम्मान 2013 की घोषणा

ललित कलाओं के लिए समर्पित स्पंदन संस्था भोपाल की ओर से स्थापित सम्मानों की शृंखला में वर्ष 2013 के सम्मानों की घोषणा कर दी गई है। स्पंदन कृति सम्मान श्री दिनेश कुशवाहा को (कविता संग्रह 'इसी काया में मोक्ष'), स्पंदन कृति सम्मान श्री भालचन्द्र जोशी को (कहानी संग्रह 'जल में धूप'), स्पंदन आलोचना सम्मान श्री सुशील सिद्धार्थ को, स्पंदन साहित्यिक पत्रिका सम्मान श्री ज्ञानरंजन को ('पहल' के लिए), स्पंदन बाल साहित्य सम्मान श्री राष्ट्रबंधु को, स्पंदन प्रवासी कथा सम्मान श्रीमती सुधा ओम ढींगरा को तथा स्पंदन ललित कला सम्मान (गायन के लिए) सुश्री कलापिनी कोमकली को प्रदान किये जाएँगे। स्पंदन सम्मान की संयोजक सुश्री उर्मिला शिरीष के अनुसार प्रत्येक को सम्मान स्वरूप ग्यारह हजार रुपये की राशि, स्मृति चिह्न, शॉल तथा श्रीफल, भोपाल में आयोजित सम्मान समारोह में प्रदान की जाएगी।

भगवानदास मोरवाल की दो पुस्तकों 'नरक मसीह' और 'दस प्रतिनिधि कहानियाँ' का लोकापर्ण





बधाई

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा 2013 का 'हिन्दी विदेश प्रसार सम्मान' 7 दिसम्बर 2014 को अमेरिका की डॉ. सुधा ओम ढींगरा और यूके की डॉ. कविता वाचक्नवी को दिया गया। दोनों इस सम्मान समारोह में पहुँच नहीं पाई और डॉ. सुधा ओम ढींगरा की तरफ से डॉ. प्रेम जनमेजय ने और डॉ. कविता वाचक्नवी की तरफ से उनके बेटे ने एक लाख की धन राशि, ताम्र पत्र और अंग वस्त्र सम्मान स्वरूप ग्रहण किए। हिन्दी चेतना की पूरी टीम की ओर से दोनों सम्मानित रचनाकारों को हार्दिक बधाई!!



कहानी संग्रह 'जनता दरबार' का लोकार्पण

कहानीकार शम्भु पी सिंह की कहानी संग्रह 'जनता दरबार' का १८ नवम्बर को पटना पुस्तक मेला के मंच पर सर्वश्री त्रिपुरारि शरण, प्रधान सचिव, विज्ञान एवं प्रावैधिकी, बिहार सरकार, प्रसिद्ध कवि अरुण कमल, मदन कश्यप, मुकेश प्रत्युष, साहित्यकार कर्मेन्दु शिशिर, अवधेश प्रीत के साथ श्री पी एन सिंह, निदेशक, दूरदर्शन केंद्र पटना के हाथों संपन्न हुआ।



स्वाति तिवारी, मोहन सगोरिया, इस्मत जैदी और रियाज़ मोहम्मद रियाज़ को सम्मान

साठोत्तरी हिंदी कविता के यशस्वी कवि जनार्दन शर्मा की पुण्यतिथि पर हर वर्ष होने वाली पुण्य स्मरण संध्या का आयोजन इस वर्ष भी 19 जनवरी को किया जाएगा। इस पुण्य स्मरण संध्या में साहित्यिक पुस्तकों की अग्रणी प्रकाशन संस्था शिवना प्रकाशन द्वारा चार सम्मान प्रदान किये जाएंगे। सीहोर पत्रकारिता की पहचान रहे स्व. बाबा अम्बादत्त भारतीय की स्मृति में स्थापित शिवना सम्मान जो पत्रकारिता अथवा शोध पुस्तक हेतु प्रदान किया जाता है, वह साहित्यकार श्रीमती स्वाति तिवारी को उनकी सामयिक प्रकाशन से प्रकाशित भोपाल गैस कांड पर लिखी गई बहुचर्चित पुस्तक 'सवाल आज भी जिंदा है' हेतु प्रदान किया जाएगा। श्रीमती स्वाति तिवारी मध्यप्रदेश संदेश पत्रिका की सहायक संपादक हैं, वे भोपाल में जनसंपर्क विभाग में पदस्थ हैं तथा देश की ख्यातिनाम कहानीकार हैं। पैंतीसवा जनार्दन शर्मा सम्मान प्रतिष्ठित कवि श्री मोहन सगोरिया को साखी प्रकाशन से प्रकाशित उनकी कविता पुस्तक 'दिन

में मोमबत्तियाँ' हेतु प्रदान किया जायेगा। वर्तमान में हिन्दी कविता के महत्त्वपूर्ण कवि श्री मोहन सगोरिया समय के साखी तथा इलेक्ट्रानिकी आपके लिये पत्रिकाओं के सह संपादक हैं उनके इस संग्रह में उनकी एक ही विषय नौद पर लिखी कविताएँ संकलित हैं। गीतकार स्व. रमेश हठीला की स्मृति में दिया जाने वाला शिवना सम्मान वरिष्ठ शायर श्रीमती इस्मत जैदी को प्रदान किया जायेगा। सतना मध्यप्रदेश की श्रीमती जैदी अपनी सांप्रदायिक सौहार्द तथा अमन-शांति की गजलों के लिए एक जाना पहचाना नाम हैं। गीतकार श्री मोहन राय की स्मृति में दिया जाने वाला शिवना सम्मान सीहोर के ही वरिष्ठ शायर श्री रियाज़ मोहम्मद रियाज़ को दिया जा रहा है। अपनी अनूठी तथा अलग मिजाज की गजलों के लिये श्री रियाज़ श्रोताओं के बीच बहुत सराहे जाते हैं। सम्मानों हेतु नाम चयन करने के लिये समिति का गठन प्रोफेसर डॉ. पुष्पा दुबे की अध्यक्षता में किया गया था, चयन समिति ने सर्व सम्मति से इन तीनों नामों का चयन किया है।

Mahesh Patel

Zan Financial & Accounting Service

Mortgage, Life Insurance, Book Keeping, Personal Income Tax, Corporate Income Tax, RRSP & RESP

88 Guinevere Road, Markham,

ON L 3S 4 v2 416 274 5938
Mahesh2938@yahoo.ca

Beacon Signs

1985 Inc.

7040 Torbram Rd. Unit # 4, Mississauga, ONT.L4T3Z4

Specializing In :

**Illuminated Signs Awnings & Pylons
Channel & Neon Letters**

**Banners
Silk Screen**

**Arthitectural Signs
Vehicle Graphics
Engraving**

Design Services

**Precision CNC Cutout Letters
(Plastic, Wood, Metal & Logos)
Large Format Full Colour Imaging System
Sales - Service - Rentals**

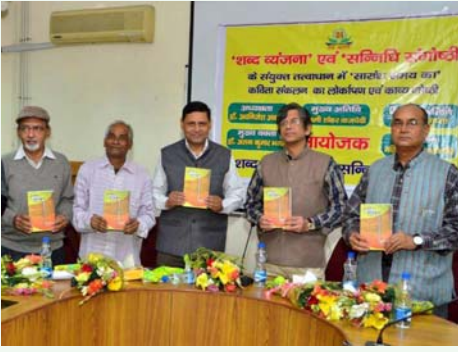
Manjit Dubey

दुबे परिवार की ओर से हिन्दी चेतना को बहुत बहुत शुभकामनायें

Tel:(905) 678-2859

Fax :(905) 678-1271

Email: beaconsigns@bellnet.ca



‘सारांश समय का’ लोकार्पण समारोह एवं काव्य गोष्ठी

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली के ‘अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन केंद्र’ में 22 नवम्बर 2014 को ‘शब्द व्यंजना’ और ‘सन्निधि संगोष्ठी’ के संयुक्त तत्वाधान में ‘सारांश समय का’ कविता-संकलन का लोकार्पण समारोह एवं काव्य गोष्ठी का आयोजन किया गया। ‘सारांश समय का’ कविता संकलन का संपादन बृजेश नीरज और अरुण अनंत ने किया है। कार्यक्रम की अध्यक्षता प्रसून लतांत ने की, जबकि लक्ष्मी शंकर वाजपेयी मुख्य अतिथि एवं रमणिका गुप्ता, डॉ. धनंजय सिंह, अतुल प्रभाकर विशिष्ट अतिथि के रूप में कार्यक्रम में उपस्थित थे। कार्यक्रम के मुख्य वक्ता अरुण कुमार भगत थे तथा संचालन महिमा श्री ने किया। इस आयोजन में बड़ी संख्या में कवि, लेखक तथा साहित्य प्रेमी सम्मिलित हुए। कार्यक्रम दोपहर ढाई बजे से शाम सात बजे तक चला।



प्रवासी लेखकों के साथ परिचर्चा- विचार-गोष्ठी का आयोजन

२५ दिसम्बर को आई.आई.सी., नई दिल्ली में “प्रवासी हिंदी साहित्य का वर्तमान परिदृश्य और भविष्य की संभावनाएँ” विषय पर प्रवासी हिन्दी लेखकों के साथ परिचर्चा-सह-विचार-गोष्ठी का आयोजन डॉ. कमल किशोर गोयनका की अध्यक्षता में हुआ। देश के जाने माने लेखकों के साथ यूके की दिव्या माथुर, जया वर्मा, अमेरिका की पुष्पा सक्सेना, सुधा ओम ढींगरा समेत कई प्रवासी लेखकों ने भाग लिया। डॉ. कमल किशोर गोयनका ने सब प्रवासी रचनाकारों का सम्मान किया।



संतोष चौबे की दो नई किताबों का विमोचन

स्वराज भवन में कवि-कथाकार और आलोचक संतोष चौबे की दो नई किताबों का विमोचन किया गया। इस मौके पर उन्होंने अपनी पुस्तकें ‘कला की संगत’ और ‘अपने समय में’ से कुछ अंश प्रस्तुत किए। संतोष चौबे ने कहा कि इन पुस्तकों के जरिए मैंने साहित्य, संस्कृति और कलाओं की आपसदारी को नए सिरे से देखा-समझा। आलोचना की एक नई संवेदना ने मेरे भीतर जन्म लिया। उन्होंने इन पुस्तकों में संगृहीत कुछ आलेखों के अंशों का पाठ भी किया। उन्होंने कहा कि हमारी आलोचना ने जो प्रतिमान अब तक गढ़े, आज उन दायरों से बहुत आगे निकलने की जरूरत है। इस मौके पर समीक्षा करते हुए वरिष्ठ कवि राजेश जोशी ने संतोष चौबे के कृतित्व और व्यक्तित्व पर चर्चा की। उन्होंने कहा कि संतोष चौबे लगभग चार दशकों से साहित्य और कला में सतत सक्रिय हैं और उनकी इन दोनों क्षेत्रों में बराबर की रुचियां उनके सृजन में झलकती हैं। युवा आलोचक पंकज चतुर्वेदी ने कहा कि उनकी आलोचना और विचार बहुत व्यापक और विविध हैं। वह विभिन्न साहित्य और कला के तमाम रूपों में ही नहीं बल्कि ज्ञान के विभिन्न अनुशासनों में भी सजग आवाजाही करते हैं। उनके बीच अनिवार्य अंतरसंबंध की चेतना से उनका लेखन आलोकित है। यह एक सच्चे लोकतांत्रिक नजरिए से की गई आलोचना है क्योंकि वे रचनाकारों में छोटे-बड़ा का भेद नहीं करते। प्रतिभा को वे जन्मजात गुण नहीं मानते बल्कि जीवन संघर्ष के बीचों बीच अर्जित की गई विशेषता मानते हैं। कला समीक्षक विनय उपाध्याय ने संतोष चौबे के कृतित्व पर चर्चा की साथ ही उन्होंने कार्यक्रम का संचालन किया।

व्यंग्य यात्रा के संपादक प्रेम जनमेजय को श्रीनारायण चतुर्वेदी सम्मान



७ दिसम्बर को व्यंग्य यात्रा के संपादक डॉ. प्रेम जनमेजय को श्रीनारायण चतुर्वेदी सम्मान से सम्मानित करते समय घोषित किया गया कि उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान पहली बार व्यंग्य केंद्रित सम्मान आरम्भ कर रहा है। निश्चित ही यह हिंदी व्यंग्य की बढ़ती स्वीकार्यता का सूचक है। व्यंग्य साहित्य में विशिष्ट योगदान एवं दीर्घकालीन साहित्य सेवा के लिए दो लाख की राशि, ताम्र पत्र और अंगवस्त्र से प्रेम जनमेजय को सम्मानित किया गया।

चित्रकार :
अरविंद नारले



'साधु का योग'

एक दिन साधु के मन में विचार आ गया एक अजीब, चढ़ बैठा शाख पर वृक्ष की करने को साधना अपनी पर शायद था मन में खोटा प्रभु ने दी एक ऐसी चोट। डाली चटख गई पेड़ से हुआ साधु का उल्टांग, जकड़ कर डाली को भरपूर होने लगा पेड़ से दूर प्रश्न उठ रहा है मन में साधु मग्न है स्वयं में अरे भागो, दौड़ो चेलों तुम साधु को नीचे ले आओ मिलकर उसकी जान बचाओ। योग साधना के मंत्रों से छींटे उस पर खूब लगाओ धरती पर ही उसे बैठा कर प्रवचन ही उससे करवाओ।

धरती उलटी या मैं उल्टा

धरती उलटी या मैं उल्टा कोई न जाने किसका फेर टहनी पर लटका हूँ मैं पृथ्वी को देखने शाम सवेर।

पनघट पर आती कोमल बाला देख मुझे करती है सवाल क्या उलटापन कोई है भला इलाज।

राहगीर भी न छोड़े मुझ को करते अनेकों सवाल सीधा उत्तर किसी को न भाए इसलिए धरती उलटी ही सही मैं भी उल्टा करूँ न सीधा सवाल सीधा ही शोर मचाएँ और बवाल।

धरती उलटी या मैं उल्टा कोई न जाने किसका फेर टहनी पर लटका हूँ मैं पृथ्वी को देखने शाम सवेर

योगा

रामदेव ने इक दिन सोचा, कोई ऐसी तरकीब लड़ाऊँ, योगा तो अब घर-घर होता, अब मैं पर्यावरण बचाऊँ। इतना प्रदूषण फैल रहा है, भविष्य में जाने क्या होगा ? साँस लेना मुश्किल होगा, कुछ काम न आएगा यह योगा। लोग काट रहे हैं पेड़ धडाधड़, और नए लगाते हैं कम बिना पेड़ न होगी शुद्ध हवा, और हम साँस न ले पाएँगे। यही सोच बाबा चढ़ा पेड़ पर, उलटा-पुल्टा उसमें लटका कुछ योगा आसन गढ़ डाले, समाधान पा लिया इस संकट का। अब यही प्रचार करूँगा, कि जो भी पेड़ पर चढ़ करेगा योगा, उसे जमीन से ज्यादा, पेड़ पर चढ़कर होगा अधिक फायदा।

सविता अग्रवाल 'सवि' (केनेडा)

अदिति मजूमदार (अमेरिका)

सुरेन्द्र पाठक (कैनेडा)



इस चित्र को देखकर आपके मन में कोई रचनात्मक पंक्तियाँ उमड़-घुमड़ रही हैं, तो देर किस बात की, तुरन्त ही कागज़ क्रलम उठाइये और लिखिए। फिर हमें भेज दीजिए। हमारा पता है :

HINDI CHETNA

6 Larksmere Court, Markham, Ontario, L3R 3R1,
e-mail : hindichetna@yahoo.ca



जिस जीव का जैसा भोजन, वैसा ही उसको भाये, भूख लगी तो उसे देखकर, उसके मुँह में पानी आये, इस चित्र में देखें आप, एक औरत है खड़ी हुई, और एक गाय की नज़रें, उसके ऊपर टिकी हुई, एक टोकरी में भरके, लिए जा रही थी वह अनाज, गाय ने अपनी गर्दन घुमाई, सुनी जब इसकी आवाज़ ॥ मुँह से अपने मों-मों बोली, ज़ोर-ज़ोर से सिर हिलाया, मुड़-मुड़कर दूर तक देखा, औरत ने गाय को जाते, सुनती रही उसकी आहट, सूखी घास को खाते-खाते ॥

थी औरत की मजबूरी, इस गेंहूँ को पिसवायेगी, आटा बनाकर कुछ रोटियाँ, वो अपने लिए बनाएगी, गाय के भोजन से बदलकर, बन जाएगा इसका भोजन, जिसके लिए ललचाएगा, इसका भूखा तन-बदन ॥



चित्रकार :
अरविंद नारले



कवि:
सुरेन्द्र पाठक

चित्र को उल्टा करके देखें

आम है, दोनों का स्वादिष्ट भोजन, देखें कौन इसे अब खाए ॥
बन्दर ताल में बैठा हुआ, आम पर अपनी नज़र टिकी,
सारा स्वाद इस बन्दर ने कर दिया है, बर्बाद,
दाँतों से थोड़ा आम काट कर, बस उसने चखा था स्वाद,
हर के मारे खड़ी हुई है, कैसे बन्दर से अब पाए,
कहीं न आ कर मारे झपट्टा, मरा आम न छीनकर, ले जाए,
शायद आम पर पड़ गई होगी, बन्दर की भूखी नज़र,
दीवार पर बैठा देखा बन्दर, उसकी लंग गई बड़ी फिक,
छोटा नाक, नन्हीं ठोड़ी, छोटी आँखें, पलकें बड़ी,
ठक रहा है अपना सिर, माथे पर मोतियों की लड़ी,
एक युवती चली जा रही, हाथ में पकड़े हुए एक आम,
चित्र उलटा करके देखो, इस बात का और परिणाम,

पाठक, लेखक और हिन्दी चेतना एक त्रिवेणी है

‘हिन्दी चेतना’ के ‘कथा-आलोचना विशेषांक’ को काफी सराहना मिली। पाठकों के बहुत से पत्र आए। आलोचना के मापदंडों को लेकर इस विशेषांक में चर्चा की गई थी और मैंने इस अंक में अपने आखिरी पत्रे पर लिखा था कि स्वस्थ आलोचना हमेशा रचनात्मकता में सुधार लाती है। पर स्वस्थ आलोचना होती कितनी हैं? यह एक विचारणीय प्रश्न है ; जो समय-समय पर उभरता रहता है।



इस विशेषांक के बाद ही मुझे ‘पड़ाव और पड़ताल’ खण्ड-7(सम्पादक : मधुदीप) में ‘समकालीन लघुकथा: सामान्य अनुशासन’ के पृष्ठ 18,19 को पढ़ने का मौका मिला। ‘लाघव’ के अंतर्गत मेरी लघुकथा का जिक्र है। आभारी हूँ कि आलोचक ने मेरी लघुकथा पढ़ी और उसकी चर्चा की। एक बात और समझ में नहीं आई, आलोचक ने लिखा है ‘अनेक लघुकथाओं में यह कमी देखने को मिल जाती है।’ पर चर्चा सिर्फ मेरी लघुकथा की है। लघुकथा के इतिहास में सिर्फ मेरी लघुकथा में ही कमी नहीं, जो अनेकों लघुकथाओं में कमी है, उनका जिक्र कहीं नहीं किया गया। उनमें से कुछ नई-पुरानी लघुकथाओं के बारे में बताया होता तो मेरे साथ-साथ और लेखकों को भी लघुकथा में ‘लाघव’ की कमी को समझने में आसानी होती। लाघव का निर्वाह न करने वाली मेरी लघुकथा ‘मर्यादा’ को वहाँ दिया भी गया है, लाघव का निर्वाह करने वाली लघुकथाओं के जिक्र के साथ-साथ अगर उन्हें वहाँ दिया जाता, तो कुछ सीखने को मिलता। आलोचना का यह मापदंड समझ में नहीं आया। इस प्रकार की आलोचनाओं की साहित्य की हर विधा में भरमार है। ये आलोचनाएँ पाठकों और लेखकों को भटकाती हैं।

इसी तरह की आलोचनाओं से तंग आए हुए पाठकों और लेखकों के पत्र हमें मिलते रहते हैं, तभी ‘हिन्दी चेतना’ की टीम ने ‘कथा-आलोचना विशेषांक’ निकालने के लिए सुशील सिद्धार्थ से आग्रह किया था। इस विशेषांक पर फ़ोन और ईमेल से अभी तक प्रतिक्रियाएँ मिल रही हैं; जिन्हें हम समय-समय पर प्रकाशित करते रहेंगे।

पत्रिका का संपादन करते हुए एक बात जो मैंने महसूस की, उल्लेखनीय है। महिलाओं में रचना धर्मिता पुरुषों की अपेक्षा अधिक बढ़ गई है। जनवरी अंक में महिलाओं की रचनाएँ अधिक हैं; हालाँकि यह एक संयोग है, पर सामग्री पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं की अधिक आती है।

मित्रो! जब तक पत्रिका आप के हाथों में आएगी, नववर्ष नई आशाएँ और उमंगों के साथ आप सबके जीवन में प्रवेश कर चुका होगा। हिन्दी चेतना की भी इस वर्ष कई नई योजनाएँ हैं। समय-समय पर हम आपसे उन्हें साझा करते रहेंगे।

पाठक, लेखक और हिन्दी चेतना एक त्रिवेणी है, तीनों की आपसी साझा है और यह साझापन ही पत्रिका को आगे बढ़ा रहा है। नववर्ष में यह साझा और मजबूत हो, इसी कामना के साथ.....

आपकी मित्र

सुधा ओम दींगरा

सुधा ओम दींगरा



ट्रेन की खिड़की में से जिस प्रकार सब कुछ भागता-दौड़ता दिखाई देता है, उसी प्रकार हमारा जीवन, हमारा समय भी होता है। वर्ष बीत जाता है और एक नया साल आ जाता है, बीत जाने के लिए। हम केवल देखते रह जाते हैं उसे बीतते हुए।



बालिकाओं की शिक्षा बहुत पुण्य का कार्य है

बालिकाओं को आगे बढ़ाने के लिए बड़े स्तर पर कार्य हो रहा है ऐसे में दूसरे देशों में काम कर रही ढींगरा फाउण्डेशन जैसी संस्थाएँ सचमुच बधाई की पात्र हैं जो भारत में बालिकाओं को तकनीकी शिक्षा तथा अन्य प्रशिक्षण प्रदान करने में सहयोगी भूमिका निभा रही हैं। श्री मेवाड़ा ने कहा कि यह बहुत बड़ी बात है ढींगरा फाउण्डेशन ने इस प्रकार बालिकाओं के तकनीकी प्रशिक्षण के लिये सामने आकर पहल की है। उन्होंने कहा कि बालिकाओं को कम्प्यूटर तथा अन्य तकनीकी प्रशिक्षण प्रदान करवाना आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है और इस क्षेत्र में जो संस्थाएँ तथा लोग काम कर रहे हैं, बालिकाओं को निशुल्क प्रशिक्षण तथा डिप्लोमा दे रहे हैं वे साधुवाद के पात्र हैं। नगर पालिका अध्यक्ष श्री नरेश मेवाड़ा ने ढींगरा फाउण्डेशन यूएसए की आर्थिक सहायता से निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण प्राप्त कर रहीं बालिकाओं को निशुल्क पाठ्य सामग्री वितरण समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में अपने विचार व्यक्त किये। स्थानीय पी सी लैब पर आयोजित कार्यक्रम की अध्यक्षता समाजसेवी श्री अनिल पालीवाल ने की जबकि विशेष अतिथि के रूप में समाजसेवी श्री शंकर प्रजापति उपस्थित थे।



Samita Mishra Memorial Foundation for Cancer Research

&

Clean & Healthy India Promotions International Inc.

Presents

Swachhata Phailao

Cancer Bhagao

A fight against Cancer

on the occasion of

World Cancer Day

Dated 04.02.2015, Time 5pm to 8pm

Venue:

**Speaker Hall, Constitutional Club of India,
V.P House, Rafi Marg,
New Delhi -110001**



You are cordially Invited by



Samita Mishra Memorial Foundation
for Cancer Research
B2B/10, Janakpuri, New Delhi-110058
Web: www.cancerbhagao.org
Email ID: cancerbhagao@gmail.com
Contact: 011-46105143, 09289855855

Clean and Healthy India Promotions
International Inc.
8040 Hawkshead road,
Wake Forest , NC 27587
Web: www.chipin-inc.org
Contact: 0919 671 9292